दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

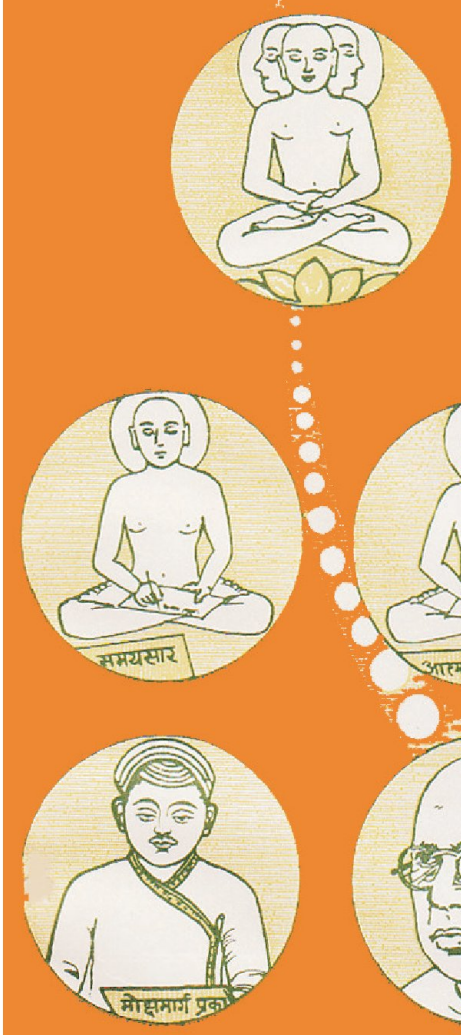

पर्याय क्रमबद्ध होने पर भी
शुद्धस्वभाव के पुरुषार्थ बिना
शुद्धपर्याय कभी नहीं होती।
— पूज्य स्वामीजी

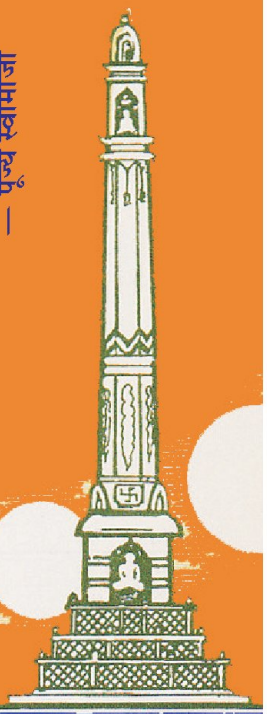

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आत्मधर्म [४०८]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल
कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)
शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे
मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ धिक ! धिक ! जीवन०....
२ जीवन ही बदल डाला
३ संपादकीय : क्रमबद्धपर्याय
४ यदि शरीर ही जीव नहीं है तो.... ?
[समयसार प्रवचन]
५ जन्म, जरा, मरण, रोग....
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

धर्म का मूल सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ भगवान प्रत्येक द्रव्य की तीनोंकाल की पर्यायों को प्रत्यक्ष जानते हैं। ये पर्यायें जिससमय होने योग्य हैं, उसी समय होती हैं—ऐसा मानने पर ही सर्वज्ञ को माना कहा जायेगा। अकर्त्तास्वभाव पर दृष्टि जाने पर ही क्रमबद्धपर्याय का यथार्थ निर्णय होता है। अकर्त्तास्वभाव की दृष्टि में स्वभाव-सन्मुखता का अनंत पुरुषार्थ भी आ जाता है।

—पूज्य स्वामीजी

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [४०८] अंक : १२

धिक! धिक! जीवन समकित बिना॥टेक॥

दान शील तप व्रत श्रुत पूजा, आतमहित न एक गिना॥
धिक! धिक! जीवन० ॥१॥

ज्यों बिनु कंत कामिनी शोभा, अंबुज बिनु सरवर सूना।
जैसे बिना एकड़े बिंदी, त्यों समकित बिन सरब गुना॥
धिक! धिक! जीवन० ॥२॥

जैसे भूप बिना सब सेना, नीव बिना मंदिर चुनना।
जैसे चंद बिहूनी रजनी, इन्हें आदि जानो निपुना॥
धिक! धिक! जीवन० ॥३॥

देव-जिनेन्द्र साधु-गुरु करुणा-धर्म-राग व्योहार मना।
निहचै देव-धरम-गुरु आतम, 'द्यानत' गहि मन वचन तना॥
धिक! धिक! जीवन० ॥४॥

जीवन ही बदल डाला

[इस स्तंभ में उन आत्मार्थियों के महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये जायेंगे, जिनके जीवन में आध्यात्मिक रुचि आत्मधर्म के माध्यम से जगी है।]

मैंने लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व आत्मधर्म का एक अंक पढ़ा था, जिसमें स्वामीजी ने व्यापारी वर्ग को संबोधित करते हुए कहा था कि :—

''गवर्मेंट सर्वेंट ५८ वर्ष में रिटायर हो जाता है, परंतु व्यापारी ने अपना कोई समय रिटायरमेंट का नहीं रखा। ९०-९५ वर्ष का हो गया है, तब भी कोल्हू के बैल की तरह पिल रहा है, जबकि जीविका उपार्जन की आवश्यकता भी नहीं है। कब धर्म-ध्यान, स्वाध्याय करेगा।''

मेरे ऊपर इस बात का असर यह हुआ कि मैंने ६० वर्ष की अवस्था में व्यापार से मुक्त होने की भावना व्यक्त की और बैंक में माहवारी खाता खोल दिया। ७ वर्ष बाद जब मैं ६० वर्ष का हो जाऊँगा, मैं जितना हर महीने जमा करता हूँ आजीवन उतना ही रुपया माहवार मिलता रहेगा।

अब मैं अपने अन्दर बड़ी स्वतंत्रता महसूस करने लगा हूँ। आत्मधर्म पढ़ने से तो—अब कोई भी कार्य करता रहूँ—मेरा ध्यान स्व की तरफ जाने लगा है। मुझे आत्मधर्म से बड़ी प्रेरणा मिली है, इसने तो मेरा जीवन ही बदल डाला है।

— प्रकाशचंद जैन बजाज, जैन वस्त्रालय, रामपुर (उ०प्र०)

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | एक अनुशीलन

[गतांक से आगे]

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि गोम्मटसार में नियतिवादी को मिथ्यादृष्टि कहा है।[१] यह क्रमबद्धपर्याय भी कुछ वैसी ही है। अतः इसमें भी एकांत का दोष आता है। पर गोम्मटसार के नियतवाद और क्रमबद्धपर्याय में बहुत अंतर है। एकांतनियतवादी तो पुरुषार्थादि अन्य समवायों की उपेक्षाकर एकांतनियतवाद का आश्रय लेकर स्वच्छंदता का पोषण करता है, जबकि क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत तो पुरुषार्थादि अन्य तथ्यों को साथ लेकर चलता है।

इस संदर्भ में जैनेंद्र सिद्धांतकोशकार की टिप्पणी दृष्टाव्य है:—

"जो कार्य या पर्याय जिस निमित्त के द्वारा जिस द्रव्य में जिस क्षेत्र व काल में जिसप्रकार से होना होता है, वह कार्य उसी निमित्त के द्वारा उसी द्रव्य, क्षेत्र व काल में उसीप्रकार से होता है। ऐसी द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावरूप चतुष्टय से समुदित नियत कार्य-व्यवस्था को 'नियति' कहते हैं। नियत कर्मोदयरूप निमित्त की अपेक्षा इसे ही 'दैव', नियत काल की अपेक्षा इसे ही 'काललब्धि' और होने योग्य नियतभाव या कार्य की अपेक्षा इसे ही 'भवितव्य' कहते हैं।

अपने-अपने समयों में क्रमपूर्वक नंबरबार पर्यायों के प्रगट होने की अपेक्षा श्री कानजीस्वामीजी ने इसके लिये 'क्रमबद्धपर्याय' शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि करने-धरने के विकल्पोंपूर्ण रागी बुद्धि में सब कुछ अनियत प्रतीत होता है, परंतु निर्विकल्प समाधि के साक्षीमात्र भाव में विश्व की समस्त कार्यव्यवस्था उपरोक्त प्रकार नियत प्रतीत होती है। अतः वस्तुस्वभाव, निमित्त (दैव), पुरुषार्थ, काललब्धि व भवितव्य इन पाँचों समवायों से समवेत तो उपरोक्त व्यवस्था सम्यक् है; और इनसे निरपेक्ष वही मिथ्या है। निरुद्यमी पुरुष मिथ्या

१. गोम्मटसार, कर्मकाण्ड, गाथा ८८२

नियति के आश्रय से पुरुषार्थ का तिरस्कार करते हैं, पर अनेकांतबुद्धि इस सिद्धांत को जानकर सर्व बाह्य व्यापार से विरक्त हो एक ज्ञातादृष्टा भाव में स्थिति पाती है।''[१]

कार्योत्पत्ति में पंच कारणों के समवाय को सम्यक् घोषित करते हुए आचार्यसिद्धसेन सम्मईसुत्तं (सन्मति सूत्र) में लिखते हैं:—

''कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिस कारणेगंता।
मिच्छतं ते चेव उ समासओ होंति सम्मतं॥५३॥

काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत (निमित्त) और पुरुषार्थ—इन पाँच कारणों में से किसी एक से कार्योत्पत्ति मानना एकांत है, मिथ्यात्व है और इनके समवाय से कार्योत्पत्ति मानना अनेकांत है, सम्यक्त्व है।''[२]

पंच समवायों की चर्चा पद्मपुराण में इसप्रकार है :—

''कालः कर्मेश्वरो दैवं स्वभावः पुरुषः क्रिया।
नियतिर्वा करोत्येवं विचित्रं कः समीहितम्॥

उक्त छंद में राम को बनवास और भरत को राज्य दिये जाने पर जनता अपने भाव व्यक्त कर रही है:—

ऐसी विचित्र चेष्टा को काल, कर्म, ईश्वर, दैव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है और कौन कर सकता है?''[३]

इसी बात का स्पष्टीकरण करते हुए जैनेन्द्र सिद्धांतकोशकार लिखते हैं:—

काल को नियति में, कर्म व ईश्वर को निमित्त में, और दैव व क्रिया को भवितव्य में गर्भित कर देने पर पाँच बातें रह जाती हैं। स्वभाव, निमित्त, नियति, पुरुषार्थ व भवितव्य—इन पाँच समवायों से समवेत ही कार्य-व्यवस्था की सिद्धि है, ऐसा प्रयोजन है।[४]

इस संदर्भ में स्वामीजी का स्पष्टीकरण भी देखिये:—

---

१. जैनेन्द्र सिद्धांतकोश, भाग २, पृष्ठ ६१२
२. सम्मई सुत्तं, अध्याय ३, गाथा ५३
३. आचार्य रविषेण, पद्मपुराण, सर्ग ३१, श्लोक २१३
४. जैनेन्द्र सिद्धांतकोश, भाग २, पृष्ठ ६१८

''गोम्मटसार में जो नियतवाद कहा है, वह तो स्वच्छन्दी का है। जो जीव सर्वज्ञ को नहीं मानता, ज्ञानस्वभाव का निर्णय नहीं करता, जिसने अंतरोन्मुख होकर समाधान नहीं किया है, विपरीत भावों के उछाले कम भी नहीं किये हैं, और 'जैसा होना होगा'—ऐसा कहकर मात्र स्वच्छंदी होता है और मिथ्यात्व का पोषण करता है—ऐसे जीव को गोम्मटसार में गृहीतमिथ्यादृष्टि कहा है। किंतु ज्ञानस्वभाव के निर्णयपूर्वक यदि इस क्रमबद्धपर्याय को समझे तो ज्ञायकस्वभाव की ओर से पुरुषार्थ द्वारा मिथ्यात्व और स्वच्छंद छूट जाये।''[१]

'अज्ञानी कहते हैं कि—इस क्रमबद्धपर्याय को मानें तो पुरुषार्थ उड़ जाता है-किंतु ऐसा नहीं है। इस क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करने से कर्त्ताबुद्धि का मिथ्याभिमान उड़ जाता है और निरंतर ज्ञायकपने का सच्चा पुरुषार्थ होता है। ज्ञानस्वभाव का पुरुषार्थ न करे उसके क्रमबद्धपर्याय का निर्णय भी सच्चा नहीं है। ज्ञानस्वभाव के पुरुषार्थ द्वारा क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करके जहाँ पर्याय स्वसन्मुख हुई वहाँ एकसमय में उस पर्याय में पाँचों समवाय आ जाते हैं। पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियत और और कर्म का अभाव—यह पाँचों समवाय एकसमय की पर्याय में आ जाते हैं।''[२]

''ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से पुरुषार्थ होता है, तथापि पर्याय का क्रम नहीं टूटता।''[३]

''देखो, यह वस्तुस्थिति! पुरुषार्थ भी नहीं उड़ता और क्रम भी नहीं टूटता। ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि का पुरुषार्थ होता है, और वैसी निर्मल दशाएँ होती जाती हैं, तथापि पर्याय की क्रमबद्धता नहीं टूटती।''[४]

उक्त कथनों से स्पष्ट है कि गोम्मटसार में एकांतों के कथन में जो नियतवादी मिथ्यादृष्टि का कथन है, उसका क्रमबद्धपर्याय में कोई साम्य नहीं है। नियतवादी जैसी स्वच्छंदता का पोषण क्रमबद्धपर्याय में कदापि नहीं है।

स्वामीजी के स्पष्टीकरण से भी यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि वे एकांत नियतवाद के पोषक नहीं हैं, अपितु सच्चे अनेकांतवादी हैं।

---

१. ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, पृष्ठ ७
२. ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, पृष्ठ ११
३. ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, पृष्ठ ९९
४. ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, पृष्ठ १००

इस पर कुछ लोग कहते हैं कि आप कुछ भी कहो, पर क्रमबद्धपर्याय का सिद्धांत लगता तो कुछ एकांत-सा ही है ?

भाई ! आपके लगने को अब हम क्या कहें ? जब अनेक आगम प्रमाणों और युक्तियों से स्पष्ट कर दिया तब भी यदि आपको एकांत-सा लगता है तो हम क्या करें ? हम तो आपके सामने युक्तियाँ और आगम ही रख सकते हैं, अनुभव तो करा नहीं सकते।

यदि गहराई से विचार नहीं करोगे, ऊपर-ऊपर ही सोचोगे तो एकांत-सा लगेगा ही। गहराई से विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह मिथ्या-एकांत नहीं है।

क्या कहा, मिथ्या-एकांत नहीं है ?

हाँ ! हाँ !! सम्यक्-एकांत तो वह है ही।

क्या एकांत भी दो तरह का होता है ?

हाँ ! हाँ !! एकांत ही क्यों, अनेकांत भी दो तरह का होता है।

तो क्या जैनदर्शन में एकांत को भी स्थान प्राप्त है ? क्या वह अनेकांतवादी दर्शन नहीं है ?

जैनदर्शन अनेकांत में भी अनेकांत स्वीकार करता है। यद्यपि जैनधर्म अनेकांतवादी दर्शन कहा जाता है, तथापि यदि उसे सर्वथा अनेकांतवादी मानें तो यह भी तो एकांत हो जायेगा। अतः जैनदर्शन में अनेकांत में भी अनेकांत को स्वीकार किया गया है। जैनदर्शन सर्वथा न एकांतवादी है और न सर्वथा अनेकांतवादी। वह कथंचित् एकांतवादी और कथंचित् अनेकांतवादी है। इसी का नाम अनेकांत में अनेकांत है।

कहा भी है:—

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्॥

प्रमाण और नय हैं साधन जिसके, ऐसा अनेकांत भी अनेकांतस्वरूप है; क्योंकि सर्वांशग्राही प्रमाण की अपेक्षा वस्तु अनेकांतस्वरूप एवं अंशग्राही नय की अपेक्षा वस्तु एकांतरूप सिद्ध है।[१]

---

१. स्वयंभूस्तोत्र, श्लोक १०३ (अरनाथ स्तुति, श्लोक १८)

जैनदर्शन के अनुसार एकांत भी दो प्रकार का होता है और अनेकांत भी दो प्रकार का। यथा—सम्यक्-एकांत और मिथ्या-एकांत, सम्यक्-अनेकांत और मिथ्या-अनेकांत। निरपेक्ष नय मिथ्या-एकांत है और सापेक्ष नय सम्यक्-एकांत है तथा सापेक्ष नयों का समूह अर्थात् श्रुतप्रमाण सम्यक्-अनेकांत है और निरपेक्ष नयों का समूह अर्थात् प्रमाणाभास मिथ्या-अनेकांत है। कहा भी है:—

जं वत्थु अणेयन्तं, एयन्तं तं पि होदि सविपेक्खं।
सुयणाणेण णएहि य, णिरवेक्खं दीसदे णेव॥

जो वस्तु अनेकांतरूप है वही सापेक्ष दृष्टि से एकांतरूप भी है। श्रुतज्ञान की अपेक्षा अनेकांतरूप है और नयों की अपेक्षा एकांतरूप है। बिना अपेक्षा के वस्तु का रूप नहीं देखा जा सकता है।[१]

अनेकांत में अनेकांत की सिद्धि करते हुए अकलंकदेव लिखते हैं:—

''यदि अनेकांत को अनेकांत ही माना जाये और एकांत का सर्वथा लोप किया जाये तो सम्यक्-एकांत के अभाव में, शाखादि के अभाव में वृक्ष के अभाव की तरह, तत्समुदायरूप अनेकांत का भी अभाव हो जायेगा। अतः यदि एकांत ही स्वीकार कर लिया जावे तो फिर अविनाभावी इतरधर्मों का लोप होने पर प्रकृत शेष का भी लोप होने से सर्वलोप का प्रसंग प्राप्त होगा।''[२]

सम्यक्-एकांत नय है और सम्यक्-अनेकांत प्रमाण।[३]

इस दृष्टि से विचार करने पर 'क्रमबद्धपर्याय' सम्यक्-नियतिवाद अर्थात् सम्यक्-एकांत है जो कि सम्यक्-अनेकांत की विरोधी नहीं, अपितु पूरक है। इस बात को यदि और अधिक स्पष्ट करें तो बात कुछ इसप्रकार होगी।

सम्यक्-अनेकांत अर्थात् श्रुतप्रमाण की दृष्टि से विचार करें तो कार्य की सिद्धि अनेक कारणों से अर्थात् पंच समवायों से होती है, किंतु सम्यक्-एकांत अर्थात् नय की अपेक्षा से

१. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा २६१
२. राजवार्तिक, अध्याय १, सूत्र ६ की टीका
३. राजवार्तिक, अध्याय १, सूत्र ६ की टीका

जिस समवाय की अपेक्षा कथन हो उससे कार्य हुआ कहा जाता है, अन्य समवाय उसमें गौण रहते हैं—उनका अभाव अपेक्षित नहीं होता।

इस दृष्टि से विचार करने पर यद्यपि प्रत्येक कार्य श्रुतप्रमाण (सम्यक्-अनेकांत) की अपेक्षा पंच समवायों से ही होता है तथापि नय की अपेक्षा जिस समवाय को मुख्य करके कथन किया जाता है, उससे कार्य सिद्धि हुई—वह कथन सम्यक्-एकांत होता है, मिथ्या-एकांत नहीं; क्योंकि उसमें अन्य समवाय गौण होते हैं, उनका अभाव नहीं होता।

प्रस्तुत प्रसंग में काल की अपेक्षा कथन करने पर प्रत्येक कार्य स्वकाल (स्वावसर) में ही होता है-यह कहना सम्यक्-एकांत होगा, मिथ्या-एकांत नहीं। क्योंकि इस कथन में पुरुषार्थादि अन्य समवाय गौण हुए हैं, उनका अभाव अभीष्ट नहीं है।

इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय को सम्यक्-एकांत भी कहा जा सकता है जो कि सम्यक्-अनेकांत का पूरक है, विरोधी नहीं।

एक कारण यह भी है कि सम्यक्-एकांत और मिथ्या-एकांत का भेद न जाननेवालों को क्रमबद्धपर्याय की बात एकांत-सी लगती है।

उक्त संदर्भ में मैं एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि क्रमबद्धपर्याय में आपको काल संबंधी एकांत ही क्यों लगता (नजर आता) है, क्षेत्र संबंधी क्यों नहीं, भाव संबंधी क्यों नहीं, निमित्त संबंधी क्यों नहीं ? जब क्रमबद्धपर्याय के स्पष्टीकरण में स्पष्टरूप में कहा गया है कि जिस द्रव्य की जो पर्याय, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस विधान, व जिस निमित्त से जैसी होनी होगी; उस द्रव्य की वह पर्याय, उसी क्षेत्र में, उसी काल में, उसी विधान से, व उसी निमित्त से वैसी ही होगी।

उक्त व्याख्या में काल के साथ द्रव्य, क्षेत्र, भाव, निमित्त व विधान भी निश्चित बताया गया है। फिर आपको काल की नियमितता में ही क्यों आशंका होती है, क्षेत्रादि की नियमितता में क्यों नहीं ?

जैसे केवलज्ञान जीव को ही होगा, अजीव को नहीं; जीव में भी भव्यजीव को ही होगा, अभव्य को नहीं—यह द्रव्य संबंधी नियमितता है। क्या इसमें आपको एतराज है ? इसीप्रकार

केवलज्ञान क्षपकश्रेणीरूप ध्यान (विधि) से ही होगा तथा ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों के अभाव (निमित्त) पूर्वक ही होगा—यह विधान और निमित्त संबंधी नियमितता है। क्या इसमें भी आपको कोई शंका है ? यदि नहीं, तो फिर काल संबंधी नियमितता में ही शंका क्यों ?

क्रमबद्धपर्याय में अकेले काल को ही नियमित स्वीकार नहीं किया है; वरन् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और निमित्त को भी नियमित स्वीकार किया है।

जब क्रमबद्धपर्याय में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, निमित्त की सभी नियमितता शामिल है तब फिर जिस काल में होना होगा उसी काल में होगा के स्थान पर यह भी कहा जा सकता है कि जिस द्रव्य का होना होगा, उसी का होगा; जिस क्षेत्र में होना होगा, उसी में होगा; जो होना होगा, वही होगा; जिस विधान से होना होगा, उसी से होगा; जिस निमित्तपूर्वक होना होगा, उसी निमित्त से होगा।

फिर काल पर ही ऐतराज क्यों ? काल ही को नियमितता में बंधन की प्रतीति क्यों, अन्य में क्यों नहीं ? क्या कारण है कि अज्ञानी काल ही में शंकित होता है ?

इसका कारण है अज्ञानी का उतावलापन। पर्याय की अचलता का ज्ञान न होने से अज्ञानी में एक प्रकार का उतावलापन पाया जाता है कि इतनी प्रतीक्षा कौन करे ? कार्य जल्दी होना चाहिये। जिसका सम्यग्दर्शन-पर्याय की प्राप्ति का काल दूर होता है, उसे काल की नियमितता का विश्वास नहीं हो पाता।

लोक में भी देखा जाता है कि जिसे किसी काम को होने का काल समीप दिया जाता है—बताया जाता है, वह सहज स्वीकार कर लेता है; पर जिसे लम्बा काल बताया जाता है या दिया जाता है तो उसे बदलवाने का यत्न करता है, उसे वह काल स्वीकार नहीं होता। उसीप्रकार जिसका आत्महित का काल दूर है, उसे काल का निश्चित होना सुहाता नहीं है। जिसे काल का निश्चित होना सुहाता नहीं है, समझना चाहिये कि उसका सत्य समझने का काल अभी दूर है। उसमें काल को बदलने की वृत्ति, उतावलापन बना ही रहता है। यह उतावलेपन की वृत्ति ही उसे यह स्वीकार नहीं करने देती कि जब होना होगा तभी होगा।

यदि गहराई से विचार करें तो समझ में आ सकता है कि द्रव्य-क्षेत्रादि के समान काल भी नियमित है। पर गहराई से कोई विचार करे तब न ? गहराई में तो कोई जाना नहीं चाहता,

बस यों ही ऊपर-ऊपर चलती-फिरती दृष्टि डालता है—तो एकांत-सा प्रतीत होता है; पुरुषार्थ का लोप हो जायेगा—ऐसा लगता है।

आज की दुनिया इतनी जल्दी में है, इतनी उतावली हो रही है कि उसे गहराई में जाने को अवकाश ही नहीं है। इस दौड़-धूप के युग में कोई ठहरना तो दूर, चलता भी नहीं है, सिर्फ दौड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी दौड़ में शामिल है, दौड़ की धुन में है। वह अपनी धुन में इतना व्यस्त है कि उसे 'क्रमबद्धपर्याय' जैसे गंभीर विषय पर शांति से गंभीरता से विचार करने को समय ही नहीं है।

यह त्रस्त जगत विषय-कषाय में इतना अभ्यस्त हो गया है, विषय-कषाय की सामग्री को जोड़ने के विकल्प में ही इतना व्यस्त हो रहा है कि—"मैं कौन हूँ, मेरा क्या स्वरूप है, यह जगत क्या है, इसकी परणति का कर्त्ता कौन है ?"—आदि दार्शनिक विषयों पर विचार करने की फुरसत ही इसे कहाँ है ? इन बातों पर विचार करना तो यह निठल्ले लोगों का काम मानने लगा है। यह तो बस दौड़े जा रहा है बिना लक्ष्य के ही।

यदि आपको इस जगत का उतावलापन देखना है तो किसी भी नगर के व्यस्त चौराहे पर खड़े हो जाइये और देखिये इस दुनिया का उतावलापन। चौराहे पर मौत की निशानी लालबत्ती है, एक सिपाही भी खड़ा है आपको रोकने के लिये, फिर भी आप नहीं रुक रहे हैं; अपनी मौत की कीमत पर भी नहीं रुक रहे हैं। यद्यपि आप अच्छी तरह जानते हैं कि लालबत्ती होने पर सड़क पार करना खतरे से खाली नहीं, कभी भी किसी भारी वाहन के नीचे आ सकते हैं, पुलिसवाला भी आपको सचेत कर रहा है, फिर भी आप दौड़े जा रहे हैं। क्या यह उतावलेपन की हद नहीं है ? इतनी भी जल्दी किस काम की ? पर ऐसा उतावलापन कहीं भी देखा जा सकता है। क्या यह देश का दुर्भाग्य नहीं है कि आप अपने उतावलेपन के कारण लालबत्ती होने पर भी किसी वाहन के नीचे आकर मर न जावें—मात्र इसलिये लाखों पुलिसमैनों को चौराहों पर खड़ा रहना पड़ता है।

अपनी मौत की भी कीमत पर जिनको इतनी भी देरी स्वीकृत नहीं, पसंद नहीं; ऐसे अधीरिया—उतावले लोगों की समझ में यह कैसे आ सकता है कि जो कार्य जब होना होगा, तभी होगा।

यह काम तो धीरता का है, गंभीरता का है; वीरता का भी है। जो धैर्य से गंभीरतापूर्वक मनन करे, चिंतन करे, उस वीर की समझ में ही क्रमबद्धपर्याय आती है। इसमें पुरुषार्थ का लोप नहीं होता, वरन सच्चा पुरुषार्थ प्रगट होता है।

उतावलेपन के अतिरिक्त पक्षव्यामोह भी एक कारण है जो काल की नियमितता की सहज स्वीकृति में बाधक बनता है।

पक्षव्यामोह से रहित आत्मार्थी वीर बंधुओं से अनुरोध है कि वे एकबार इस महत्त्वपूर्ण विषय पर धीरता व गंभीरता से विचार करें। [क्रमशः]

समयसार प्रवचन

यदि शरीर ही जीव नहीं है तो.... ?

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की छब्बीसवीं गाथा और उसमें समागत चौबीसवें कलश पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार है:—

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो॥२६॥

यदि जीव शरीर नहीं है तो तीर्थंकरों और आचार्यों की जो स्तुति की गयी है, वह सभी मिथ्या है; इसलिये जो आत्मा है, वही शरीर है (ऐसा हम समझते हैं)।

आचार्यदेव ने यह गाथा अप्रतिबुद्ध की ओर से प्रस्तुत की है। पहले आचार्यदेव अप्रतिबुद्ध का लक्षण १९वीं गाथा में कह आये हैं कि देह और आत्मा में एकत्वबुद्धि करनेवाला जीव अप्रतिबुद्ध है—अज्ञानी है। इसके बाद आचार्यदेव ने देह और आत्मा की भिन्नता सिद्ध करते हुए २३वें कलश में देह से भिन्न आत्मा का अनुभव करने की प्रेरणा दी है।

अज्ञानी को समझाते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! मरण जितना कष्ट सहकर भी तू तत्त्व का कौतुहली बन और शरीर का पड़ोसी बनकर उससे भिन्न अतीन्द्रिय ज्ञानानंदस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव कर।

जीव और देह परमार्थ से भिन्न-भिन्न ही हैं, उन्हें एक कहना यह तो व्यवहार है—यह बात स्पष्ट करने के लिये यहाँ पर कुंदकुंद आचार्यदेव कलश बनाते हैं। आगे की गाथाओं में आचार्यदेव अज्ञानी के तर्क का उत्तर देते हुए पुनः देह और आत्मा को भिन्न-भिन्न सिद्ध करेंगे।

अहो! आचार्यदेव के हृदय में कितनी करुणा है। छठवें-सातवें गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनंद में झूलनेवाले दिगंबर संतों को ऐसा शुभ विकल्प आता है कि जगत के सभी जीव देह से भिन्न आत्मा का अनुभव करके अतीन्द्रिय आनंद का वेदन करें। आचार्यदेव स्वयं अतीन्द्रिय आनंद का प्रचुर वेदन करते हैं, परंतु पूर्ण निर्विकल्प दशा प्रगट नहीं हुई है इसलिये उन्हें ऐसा शुभविकल्प आता है; इसीलिये वे बारंबार देह और आत्मा की भिन्नता को स्पष्ट करते हैं।

देह से भिन्न आत्मा का अनुभव करने की प्रेरणा सुनकर जिज्ञासु शिष्य विनयपूर्वक दृढ़ता से अपना अभिप्राय व्यक्त करता है कि हे प्रभो! आप अत्यंत जोर देकर कहते हैं कि शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हैं; परंतु मुझे तो ऐसा लगता है कि शरीर और आत्मा एक ही हैं, अलग-अलग नहीं हैं। यदि शरीर और आत्मा अलग-अलग हों तो तीर्थंकरों और आचार्यों की जो स्तुति आप करते हैं; वह मिथ्या सिद्ध होती है।

भगवान की स्तुति करते समय आप भी मात्र आत्मा की स्तुति नहीं करते। भगवान का आत्मा अनंतज्ञान आनंद-स्वरूप है; एक समय में तीन काल तीन लोक को जानने की अद्‌भुत सामर्थ्य उनकी एकसमय की पर्याय में प्रगट हुई है—मात्र इसप्रकार की स्तुति ही आप नहीं करते; बल्कि उनकी स्तुति में यह भी कहते हैं कि भगवान का रूप अत्यंत शांत एवं मनोहर है, उनकी दिव्यध्वनि आनंददायक है। इसप्रकार जब आप भी भगवान की स्तुति करते समय उनके शरीर और वाणी तथा समवसरण आदि का गुणगान करते हैं तो मैं समझता हूँ कि शरीर और आत्मा एक ही हैं। आप भले जोर देकर शरीर और आत्मा को अलग-अलग सिद्ध करें, परंतु मुझे तो शास्त्राधार से भी शरीर और आत्मा एक ही लगते हैं।

देखो! शिष्य की पात्रता; वह इतना तो समझता है कि आचार्यदेव का जोर देह और

आत्मा की भिन्नता पर है और आचार्यदेव मुझे भी देह से भिन्न आत्मा की अनुभूति करने की प्रेरणा दे रहे हैं; परंतु वह शास्त्रों में की गई तीर्थंकरों और आचार्यों की स्तुतियों के आधार पर देह और आत्मा को एक सिद्ध करना चाहता है।

अन्य ज्ञानियों ने भी देह की अपेक्षा भगवान की स्तुति की है।

आचार्य मानतुंग भी भक्तामर में कहते हैं कि हे भगवान! जगत में शांतरसरूप परिणमित जितने भी परमाणु थे वे सब के सब आपके शरीररूप परिणमित हो गये, इसलिये आपके समान अन्य किसी का भी रूप नहीं है। पंडित दौलतरामजी भी कहते हैं—'जय परमशांत मुद्रा समेत।'

इसप्रकार अनेकों जगह आचार्यों और ज्ञानी गृहस्थों ने देह की अपेक्षा भगवान की स्तुति की है; परंतु वे तो नयविभाग को समझकर व्यवहार से ऐसी स्तुति करते समय भी देह से भिन्न आत्मा की प्रतीति करते हैं। देह के गुणगान करते समय भी वे जानते हैं कि यह स्तुति तो व्यवहार से की जा रही है; परमार्थ से तो आत्मा देह से भिन्न ही है। परंतु शिष्य नयविभाग नहीं समझता इसलिये ऐसी शंका करता है।

शिष्य की शंका को स्पष्ट करते हुए टीकाकार आचार्य अमृतचंद्रदेव स्वयं कलश बनाकर भगवान की स्तुति करते हैं:—

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्ना निरूंधंति ये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णंति रूपेण ये
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरंतोऽमृतं
वंद्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वरा सूरयः ॥२४॥

जो अपने शरीर की कांति से दशों दिशाओं को धोते हैं; अपने तेज से, उत्कृष्ट तेजवाले सूर्यादि के तेज को ढँक देते हैं; अपने रूप से लोगों का मन हर लेते हैं; दिव्यध्वनि से कानों में साक्षात् सुखामृत बरसाते हैं; एक हजार आठ लक्षणों के धारक हैं; वे तीर्थंकर और आचार्य वंदनीय हैं।

देखो! यहाँ देह की अपेक्षा से भगवान का गुणगान किया गया है। व्यवहार स्तुति में भी भगवान के ऐसे परमशांत रूप, दिव्यध्वनि आदि की स्तुति की जाती है।

भगवान को क्षुधा, तृषा, रोग आदि से युक्त माने तो वह व्यवहार स्तुति भी नहीं है। तीर्थंकर भगवान को जिस शरीर का संयोग होता है, वह परमौदारिक होता है। उसमें क्षुधा, तृष्णा, रोग आदि दोष नहीं होते। उनका शरीर स्फटिकमणि जैसा निर्मल होता है तथा उसमें सात-सात भव दिखते हैं। उनके पास जाते ही भव्य जीवों का मन मोहित हो जाता है और वे भक्ति से उनके चरणों में नम जाते हैं।

समवसरण में भी भगवान की देह सिंहासन से चार अंगुल ऊपर अंतरिक्ष में स्थिर रहती है। देखो तो! अंदर में भगवान आत्मा के आश्रय से अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य की निरालंबी पर्यायें प्रकट हुई हैं तो बाह्य में निमित्तरूप से देह भी निरालंबी है तथा उनकी दिव्यध्वनि में भी निरालंबी ध्रुवस्वभाव के अवलंबन से निरालंबी धर्म प्रगट करने का उपदेश आता है।

भगवान के होठ बंद होते हैं तथा संपूर्ण शरीर में से ओंकार ध्वनि निकलती है जिसे अपने-अपने क्षयोपशमानुसार मनुष्य-तिर्यंचादि सभी जीव अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं।

आज से ढाई हजार वर्ष पहले अंतिम तीर्थंकर महावीर प्रभु ऐसी ही दशा में इसी भारतभूमि में विचरते थे। परंतु अब इस भरतक्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर भगवान का विरह पड़ा है। महाविदेहक्षेत्र में अभी भी सीमंधरादि बीस तीर्थंकर साक्षात् विचरते हैं। उनकी एक करोड़पूर्व की आयु है, तथा पाँच सौ धनुष प्रमाण देह है। सीमंधर भगवान समवसरण में साक्षात् विराजते हैं। उनकी दिव्यध्वनि सुनने स्वर्ग से इंद्र और देव भी आते हैं। गणधरदेव और लाखों दिगंबर संतों की उपस्थिति में उनकी दिव्यध्वनि में देह से भिन्न आत्मा का स्वरूप और उसके अनुभव की विधि आती है।

इस शास्त्र के कर्त्ता कुंदकुंदाचार्यदेव को भी वर्तमान में साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा का विरह सताता था। 'रे रे सीमंधरानाथ का विरहा पड़ा इस भरत में' ऐसी उग्र दशा में वे एकबार विदेह में विराजमान साक्षात् सीमंधर भगवान के पास गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे।

अहो! कुंदकुंदाचार्यदेव ने तो पंचमकाल में भरतक्षेत्र में अध्यात्म की गंगा बहाई है। वे अंतर में विद्यमान देह से भिन्न विदेहीनाथ भगवान आत्मा के पास अंतर्मुहूर्त में हजारों बार जाते थे। अतीन्द्रिय आनंद में झूलती हुई दशा में विचरते हुए उन्होंने इस परमागम की रचना की है। मंगलाचरण के श्लोक में भी गौतम गणधर के बाद उन्हीं का नाम आता है।

भाई ! महाभाग्य से तुझे यह अवसर मिला है। चौबीसों घंटे पंचेन्द्रिय के विषयभोग में फंसकर यह अवसर व्यर्थ न गँवा। दो-चार घंटे शास्त्रस्वाध्याय, मनन-चिंतन करके ज्ञानस्वभावी आत्मा का अनुभव कर ले। आत्मा का अनुभव किये बिना मात्र बाह्य शुभभाव और क्षयोपशमज्ञान से धर्म नहीं होता। यह कोरी बातें करने का मार्ग नहीं है। यह तो आत्मा को समझकर अंदर में समा जाने का मार्ग है।

यहाँ पर आचार्यदेव तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए उनका बाह्य वैभव बताते हैं। तीर्थंकर भगवान सर्वोत्कृष्ट पुण्य के धनी होते हैं। यह सुनकर कुछ लोग कहते हैं कि देखो ! पुण्य से तीर्थंकर होते हैं। परंतु भाई ! तीर्थंकर प्रकृति तो नामकर्म की प्रकृति है। ज्ञानी जीव को कोई उत्कृष्ट शुभभाव होने पर वह प्रकृति बँधती है और उसके उदय में आने पर समवसरण, दिव्यध्वनि आदि का संयोग होता है। जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति बँधती है, केवलज्ञान होने पर तो वह भाव भी नहीं होता। तीर्थंकर को जो अनंत ज्ञान दर्शनादि हैं, वे पुण्य के फल नहीं हैं; वह तो रत्नत्रय का फल है। पुण्य का फल मोक्षतत्त्व नहीं, बंधतत्त्व है, जड़तत्त्व है। परंतु अज्ञानी तो तीर्थंकर की बाह्यविभूति में ही मोहित हो जाता है; वह उनकी अंतरंग विभूति को पहचानता ही नहीं है।

तीर्थंकरों की बाह्य विभूतिवाली स्तुति सुनकर शिष्य पूछता है कि प्रभु आप भी तो भगवान की स्तुति करते समय शरीर की ही चर्चा करते हैं। स्तुति करते समय आपने यह नहीं कहा कि यह रूप, रंग आदि भगवान के आत्मा का नहीं, शरीर का है। मैंने शास्त्र में भी पढ़ा है कि दो तीर्थंकर भगवान गौर वर्ण के, दो श्याम वर्ण के, दो हरित वर्ण के, दो लाल रंग के और शेष सोलह तीर्थंकर भगवान स्वर्ण के समान वर्ण के थे। अतः शास्त्राधार से भी मुझे शरीर और आत्मा एक ही भासित होते हैं।

देखो ! शास्त्राभ्यासी होते हुए भी शिष्य उसके मर्म को नहीं समझ सका। अतः शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, और भावार्थ को समझते हुए शास्त्राभ्यास करना चाहिये। शिष्य नयार्थ नहीं समझ पाया इसलिये विनय से दृढ़तापूर्वक अपना अभिप्राय व्यक्त करता है। अब आचार्यदेव इस शंका का समाधान करते हुए २७वीं गाथा में कहेंगे कि तू नयविभाग को नहीं जानता; इसलिये तेरी समझ में यह बात नहीं आ रही है, तू नयविभाग को समझ तो सब स्पष्ट हो जायेगा।

❀*❀*

जन्म, जरा, मरण, रोग, शोकादि जीव के नहीं

परमपूज्य दिगंबर आचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ४२वीं गाथा एवं उसमें समागत कलश नं० ६० व ६१ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

चउगइभवसंभमणं जाइजरामरणरोगसोगा य।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति॥४२॥

जीव के चतुर्गति के भवों में परिभ्रमण, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान नहीं हैं।

यहाँ त्रिकाली शुद्धभाव को जीव कहा है, वर्तमान पर्याय को जीव नहीं कहा। परिभ्रमण की एकसमय की पर्याय शुद्धजीव में नहीं है। शुद्धजीव का आश्रय लेने पर चार गति भ्रमण, रोग, जन्म, मरण समस्त टल जाते हैं; अत: जीव को चार गति का भ्रमण नहीं; जन्म, मरण, रोग, शोक नहीं; कुल, योनि नहीं; जीवस्थान, मार्गणास्थान नहीं।

यह सब एकसमय की पर्याय की योग्यता है अवश्य, परंतु वह व्यवहारनय का विषय है-यह सभी भेद हैं। अभेद स्वभाव में, शुद्धनिश्चयनय के विषय में यह भेद नहीं हैं—ऐसा कहना है।

त्रिकाली स्वभाव को देखनेवाली दृष्टि से-एकरूप शुद्धस्वभाव को देखनेवाले ज्ञान के पक्ष से देखने में आवे तो जीव त्रिकाल शुद्ध है और समस्त सांसारिक विकारों का समुदाय नहीं है—ऐसा इस गाथा में कहा है।

चार गतिरूप परिभ्रमण एकसमय की पर्याय में है, शुद्धजीव में नहीं।

त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि ज्ञानावरणी आदि आठ पुद्गल कर्मों को तथा राग-द्वेषादि भाव कर्मों को स्वीकार नहीं करती। पुण्य-पापादि क्षणिक भावों को जो जीव स्वीकार करता है, उसको शुद्धस्वभाव का स्वीकार नहीं, वह नवीन कर्म बाँधता है और चतुर्गति में भटकता

है। धर्मीजीव को पुण्य-पाप का तथा कर्म का स्वीकार नहीं, उसे तो शुद्धचैतन्य का स्वीकार है, उसे पर्यायबुद्धि नहीं-स्वभावबुद्धि है। निर्बलता का राग-द्वेष होता है, किंतु वह गौण है, उसका अस्वीकार है; अतः उसी के फलरूप गति का भी स्वीकार नहीं।

श्रेणिक राजा वर्तमान में नर्क में हैं तथापि उन्हें पुण्य-पाप अथवा नर्कगति का स्वीकार नहीं, शुद्ध चैतन्यस्वभाव का ही स्वीकार है। पशुगति में भी कुछ योग्य जीव धर्म प्राप्त कर लेते हैं। ढाईद्वीप के बाहर असंख्य तिर्यंच श्रावक के व्रत ग्रहण किये हुए हैं, वे सभी तिर्यंचगति अथवा अल्प राग-द्वेष को स्वीकार न करते हुए शुद्धस्वभाव का ही स्वीकार करते हैं। धर्मी मनुष्य को कर्म का, राग का तथा मनुष्यगति का स्वीकार नहीं, शुद्धस्वभाव का ही स्वीकार है। धर्मी देव को भी शुद्धस्वभाव का ही आदर है, अन्य का नहीं।

इस भाँति चारों गतियों के धर्मी जीवों को स्वभाव की एकाग्रता है, अतः परिभ्रमण नहीं है। पर्याय में गति, राग-द्वेष अथवा द्रव्यकर्म होता है; परंतु चारगति का भ्रमण त्रिकाली स्वभाव में नहीं है; ऐसा बतलाकर पर्यायबुद्धि छुड़ाकर स्वभावदृष्टि कराने का प्रयोजन है। गति के ऊपर का लक्ष छोड़कर गतिरहित पंचमभाव—शुद्धभाव को ग्रहणकर—ऐसा कहने का आशय है।

जन्म, जरा, मरण, रोग, शोकादि का संबंध पर्याय के साथ ही है, शुद्धजीव में ऐसे भेद नहीं है।

नित्य शुद्धचिदानंदरूप कारणपरमात्मास्वरूप जीव को द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के ग्रहण करनेयोग्य विभाव परिणति का अभाव होने से जरा-रोगादि नहीं।

कारणपरमात्मा त्रिकालशुद्ध है, उसका रूप ज्ञान और आनंदमय है। दयादानादिरूप विकारभाव उसका रूप नहीं है। शक्तिस्वभाव परमात्मा में से अथवा उसमें एकाग्र होने से मोक्षरूपी कार्य प्रकट होता है, इसलिये उसे कारणपरमात्मा कहते हैं।

कोई **प्रश्न** करे कि वह कारणपरमात्मा दिखलाई क्यों नहीं पड़ता?

समाधानः-जिसको भान नहीं उसको नहीं दिखाई पड़ता। वर्तमान श्रवण करते हुए अमुक प्रकार का विचार आता है, उस विचार की पर्याय कहाँ से आती है? अज्ञानी मानता है कि उस विचार की पर्याय का उत्पाद निमित्त में से अथवा राग में से हुआ है, परंतु वह भ्रांति है। परवस्तु में से आत्मा की पर्याय नहीं आती और न ही आत्मा की एक-एक पर्याय में से दूसरी

पर्याय आती है; किंतु पर्यायवान आत्मा शक्तिस्वभाव से भरपूर है, उसी में से पर्यायें प्रवाहित होती हैं। प्राप्त की प्राप्ति होती है। त्रिकाली कारणपरमात्मा शक्तिरूप है, उसमें से मोक्ष की पर्याय प्रकट होती है–ऐसा भान नहीं है, इसलिये उसे कारणपरमात्मा दिखाई नहीं देता। वह संसार में ही भटकता है और उसका भान होते ही संसार से पार होता है।

जन्म :- शरीर के उत्पन्न होने को जन्म कहते हैं। जन्म जीव के साथ शरीर के संयोग का नाम है। त्रिकालीस्वभाव की रुचिवाले को देह में रुचि अर्थात् एकत्वबुद्धि नहीं रहती।

जरा :- शरीर की वृद्धावस्था को जरा कहते हैं। त्रिकाली स्वभाव की रुचि होने पर जरा की रुचि नहीं रहती। जरा शरीर पर लागू होती है; चैतन्य पर नहीं; ऐसे भानवाले को जरा के अभावरूप परिणमन क्षण-क्षण में होता रहता है।

मरण :- शुद्धकारणजीव को मरण नहीं–ऐसे दृष्टिवंत को वास्तव में मरण नहीं है।

शोक :- शुद्धकारणपरमात्मा में शोक नहीं, ऐसी दृष्टिवाले ज्ञानी को शोक का ग्रहण नहीं; अल्प शोक होता है, उसे गौण करके गिना नहीं, कारण कि ज्ञानी की रुचि पलट गई है, इसलिये उसको शोक के अभावरूप परणति प्रतिक्षण होती है।

शरीर के आकारों के भेदों की योग्यता जीव की पर्याय में है, परंतु शुद्धजीव में वैसे कुल के भेद नहीं हैं।

चार गति के जीवों के कुल अर्थात् शरीर के आकार तथा योनि अर्थात् उपजने के स्थानों के भेद शुद्धजीव में नहीं हैं।

पृथ्वीकायिक :- मीठे, खारे वगैरह में जीव हैं और उनके बाईस लाख करोड़ शरीर की आकृति के भेद हैं। एकसमय की अवस्था में भेद हैं, किंतु शुद्धस्वभाव में भेद नहीं हैं। मिट्टी खोदने पर जीवित मिट्टी निकली ऐसा लोग कहते हैं, वह सचित्त है। पत्थर ताजा निकलें उसमें भी जीव हैं और बाद में वे मर जाते हैं, परंतु शुद्धजीव में ऐसे कोई भेद नहीं हैं।

अपकायिक :- पानी के एक बिन्दु में असंख्य जीव हैं। उनके सात लाख करोड़ कुल हैं। शुद्धजीव में ऐसे भेद नहीं हैं। ये सब भेद पर्याय में हैं।

तेजकायिक :- चूल्हे की अग्नि में, दियासलाई की ज्वाला में असंख्यात अग्निकायिक जीव हैं। उनके तीन लाख करोड़ कुल हैं। ऐसे भेद शुद्धजीव में नहीं हैं।

वायुकायिक :- इसके सात लाख करोड़ कुल हैं ऐसे भेद पर्याय में पड़ते हैं, परंतु शुद्धजीव में ऐसे भेद नहीं हैं।

वनस्पतिकायिक :- कंदमूल आदि के एक टुकड़े में अनंत जीव हैं, ऐसे जीवों के शरीर के आकारों के भेद अठाईस लाख करोड़ हैं, परंतु वे पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं हैं।

जो जीव शुद्धजीव की पहिचान नहीं करते उन्हें ऐसे आकाररूप जन्म लेना पड़ता है, इसलिये शुद्धजीव की पहिचान करो–ऐसा कहते हैं।

एक शरीर में एक जीव हो उसे प्रत्येक वनस्पतिकाय कहते हैं। और एक शरीर में अनंत आत्मा हो उसे साधारण वनस्पतिकाय कहते हैं। आलू आदि में ऊपर दिखाई पड़नेवाला तो उनका शरीर है, उसमें अंदर अनंत आत्मायें हैं–जिन्हें केवलज्ञानी अपने दिव्यज्ञान में प्रत्यक्ष देखते हैं।

दोइंद्रिय :- खटमल आदि दो इंद्रिय जीव हैं। उनके शरीर के आकारों के भेद सात लाख करोड़ हैं। वे सब पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

तीनइंद्रिय :- चींटी आदि तीनइंद्रिय जीव हैं। उनके शरीर के आकारों के भेद आठ लाख करोड़ हैं। वे सब पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

चतुरिन्द्रिय :- मक्खी, भौंरा आदि जीवों के आकार के भेद नव लाख करोड़ हैं। वे भी सब पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

पंचेन्द्रिय :- पंचेन्द्रिय जल में रहनेवाले मछली, मगर, मच्छ आदि असंख्य जीव हैं। उनके शरीर के आकारों के भेद साढ़े बारह लाख करोड़ हैं। वे शुद्धजीव में नहीं हैं।

खेचर जीव :- उड़नशील पक्षी असंख्यात हैं। उनके शरीर के आकारों के भेद बारह लाख करोड़ हैं। वे सब भेद पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

चतुष्पाद :- गाय, भैंस आदि चार पैरों वाले जीव असंख्यात हैं। उनके शरीर के आकारों के भेद दस लाख करोड़ हैं। वे पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

पेट से चलनेवाले (रेंगनेवाले) जीव :- सर्पादि जीवों के शरीर के आकारों के भेद नव लाख करोड़ हैं। वे सभी पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

नारक :- नीचे सात नरक हैं। उनमें असंख्य नारकी हैं। उनके शरीर के आकारों के भेद पच्चीस लाख करोड़ हैं। वे पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

मनुष्य :- मनुष्य के आकार के भेद बारह लाख करोड़ हैं। वे भी शुद्धजीव में नहीं।

देव :- देवों के आकार के भेद छब्बीस लाख करोड़ हैं। वे भी पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

इस भाँति एक सौ साढ़े सत्तानवे लाख करोड़ कुल हैं।

इसप्रकार शरीर के आकारों के भेद-कुल के भेदरूप व्यवहार की बात भी सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य कौन जान सकता है? एकसमय की पर्याय में भिन्न-भिन्न जीवों के शरीर के आकारों की अपेक्षा से ऐसे भेद पड़ते अवश्य हैं; परंतु शुद्धजीव की दृष्टि से देखा जाये तो त्रिकाल शुद्धकारणपरमात्मा में ऐसे कुल के भेद नहीं हैं। अतः ऐसे भेदरूप अवतार न लेना हो तो अभेद शुद्धकारणपरमात्मा की श्रद्धा, ज्ञान करना और ऐसा करने से पर्याय में भी कुलरहित दशा प्राप्त हो जायेगी।

यह शुद्धभाव का अधिकार है। शुभाशुभभाव आत्मा की पर्याय में होते हैं, उनकी तो नहीं; किंतु शुद्धस्वभाव के आश्रय से जो शुद्धभाव नवीन प्रगट होता है, उसकी भी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो चैतन्यस्वभाव—एकरूप शुद्धस्वभाव जो शुद्धता प्रकट होने का कारण है—ऐसे अनादि अनंत एकरूप कारणशुद्धभाव का अधिकार है। कारणशुद्धभाव कहो, कारणपरमात्मा कहो, एकरूप सदृशस्वभाव कहो, चैतन्यस्वभाव कहो, परमपारिणामिकभाव कहो-सभी एकार्थवाचक हैं। ऐसे शुद्धभाव के आश्रय से धर्मदशा प्रकट होती है।

भिन्न-भिन्न आकाररूप से होना पर्याय में होता है, परंतु वे आकार अथवा कुल जीव के शुद्धभाव में नहीं हैं। अब योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान की बात करते हैं।

योनि के भेद जीव की पर्याय के साथ संबंध रखते हैं, त्रिकाली शुद्धभाव में वे भेद नहीं हैं।

पृथ्वीकाय के जीवों के उपजने के स्थान के भेद सात लाख योनिमुख हैं। तथैव अपकाय, अग्निकाय और वायुकाय के जीवों के भी सात-सात लाख योनिमुख हैं। नित्य-निगोद के जीवों के तथा नित्य निगोद में से निकलने के बाद पुनः निगोद में गये ऐसे इतर निगोद

के जीवों के भी सात-सात लाख योनिमुख हैं। वनस्पति काय के जीवों के दस लाख, द्वीन्द्रिय जीवों के दो लाख, तीन इंद्रिय जीवों के दो लाख, चतुरिन्द्रिय जीवों के भी दो लाख, देवों के चार लाख, नारकियों के चार लाख, तिर्यंचों के चार लाख तथा मनुष्यों के चौदह लाख योनिमुख हैं। इसप्रकार कुल मिलाकर चौरासी लाख योनिमुख हैं।

यह सभी भेद एकसमय की पर्याय में लागू पड़ते हैं, किंतु त्रिकाली शुद्धभाव में नहीं हैं।

चौदह जीवस्थानों के भेद पर्याय में हैं, जीव के शुद्धभाव में ऐसे भेद नहीं।

सूक्ष्म (दृष्टिगोचर न हो ऐसे) एकेन्द्रिय—पर्याप्त और अपर्याप्त (अर्थात् जिनकी पर्याप्त पूर्ण न हुई हो ऐसे), स्थूल एकेन्द्रिय—पृथ्वी, जल, इत्यादि पर्याप्त और अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, असंज्ञी तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त—ऐसे भेदवाले चौदह जीवस्थान हैं। जीव की पर्याय में ऐसे जुदा-जुदा भेद दृष्टिगोचर होते हैं, परंतु त्रिकाल शुद्ध आनंदकंद आत्मा में ऐसे भेद नहीं हैं।

चौदह मार्गणास्थान के भेद पर्याय में हैं, जीव के शुद्धस्वभाव में नहीं।

गति :- मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी ऐसी चार गतियाँ हैं। यह गतियाँ पर्याय में हैं, शुद्धजीवों में गति नहीं है।

इंद्रिय :- एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के भेद पर्याय में हैं, शुद्धजीव में नहीं।

काय :- पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय—ये छह काय हैं, इन सबसे भिन्न शुद्धभाव तो कायरहित है।

योग :- मन-वचन-काय के योग-कम्पन तो एकसमय की पर्याय में हैं, परंतु शुद्धभाव में योगों का कंपन नहीं है।

वेद :- तीन प्रकार के वेद—पुरुष, नपुंसक, स्त्री— एक समय की पर्याय में हैं। शुद्धभाव वेद रहित है।

एक समय की पर्यायदृष्टि छुड़ाकर स्वभावदृष्टि कराने के लिये ऐसा कहा है। शुद्धभाववाला आत्मा ही सम्यग्दर्शन का लक्ष्य है।

कषाय :- क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणाम एकसमय की पर्याय में होते हैं, यह

सभी परिणाम एक पर्याय में एक साथ ही होते हैं—ऐसा कहने का आशय नहीं है, परंतु होते यह सभी पर्याय में ही हैं, शुद्धस्वभाव में यह नहीं होते।

ज्ञान :- मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान—ये पाँच तो ज्ञान के भेद और कुमति, कुश्रुत, कुअवधि—ये तीन अज्ञान के भेद—ऐसे आठ भेद पर्याय में होते हैं; जिस समय जो ज्ञान हो उस समय वही समझना। सुज्ञान के समय कुज्ञान नहीं होता तथा केवलज्ञान के समय शेष चार ज्ञान नहीं होते। इनमें से कोई भी शरणभूत नहीं।

केवलज्ञान एक समय की पर्याय है। एकसमय की पर्याय त्रिकाली स्वभाव में नहीं है—ऐसा कहकर शुद्धद्रव्य की दृष्टि कराई है।

इस कथन से कोई ऐसा मान ले कि पर्याय में भी ऐसे भेद नहीं हैं तो यह बात खोटी है। भेद भेद में हैं, पर्यायें पर्यायों में हैं, उसका इंकार नहीं है। यदि कोई ऐसा मान बैठे कि पर्याय पर्याय में बिल्कुल है ही नहीं—तो यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। पर्याय पर्याय में है, परंतु त्रिकाली द्रव्य में नहीं है—ऐसा वर्तमान और त्रिकाली का ज्ञान करके त्रिकाली स्वभाव की तरफ ढलकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करे तो द्रव्य तथा पर्याय का ज्ञान सच्चा हुआ—ऐसा कहा जाये।

पर्यायदृष्टि से भेद है, परंतु स्वभावदृष्टि के बल से उन्हें अभूतार्थ कहकर उनका अभाव कहा गया है।

संयम :- सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, असंयम और संयमासंयम—ये संयम के भेद पर्याय में होते हैं, त्रिकाली स्वभाव में भेद नहीं हैं।

यहाँ स्वभावदृष्टि करवानी है। संयम की पर्याय संयम का कारण नहीं, संयम का कारण तो शुद्धभाव है।

वीतराग भगवान ने दो नय कहे हैं—उनमें से व्यवहारनय पर्याय को तथा भेद को जानता है, किंतु वह आदरणीय नहीं है। निश्चयनय त्रिकाली स्वभाव को जानता है, अत: वह आदरणीय है। भेद में भेद है, परंतु अभेद में भेद नहीं—ऐसा द्रव्यदृष्टि कराने को कहा है।

दर्शन :- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन—ये चार दर्शन के भेद पर्याय में होते हैं—जिस समय जैसा भेद हो वैसा समझना। शुद्धस्वभाव में ऐसे भेद नहीं। केवलदर्शन भी एक समय की पर्याय है—त्रिकाली स्वभाव में यह भेद नहीं।

लेश्या :- कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल—इन छह लेश्याओं में प्रथम की तीन अशुभ और अंतिम तीन शुभ हैं। एकसमय की पर्याय में ऐसे भेद पड़ते हैं। जिस समय जो लेश्या हो वही समझना। ऐसे भेद शुद्धस्वभाव में नहीं हैं।

भव्यत्व :- मोक्ष के योग्य ऐसा भव्यपना और मोक्ष के अयोग्य ऐसा अभव्यपना —इसप्रकार के विकल्प उठाना वह एकसमय की पर्याय में हैं; शुद्धभाव में ऐसे भेद नहीं।

सम्यक्त्व :- उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र—ऐसे छह भेद पर्याय में पड़ते हैं। जिससमय में जो पर्याय हो वही समझना, परंतु है वह एकसमय की पर्याय ही; त्रिकाली शुद्धभाव में ऐसे भेद नहीं हैं। सम्यग्दृष्टि की पर्याय सम्यक्त्व की पर्याय को स्वीकारती नहीं—वह तो त्रिकाली एकरूप शुद्धभाव को ही स्वीकारती है। भगवान के समीप जावे तो क्षायिक सम्यक्त्व होता है—ऐसा कथन निमित्त का ज्ञान कराने के लिये किया है। सम्यक्त्वपर्याय में से सम्यक्त्व की दूसरे समय की पर्याय प्रगट नहीं होती—पर्याय प्रगट होने का कारण त्रिकाल शुद्धभाव है। अत: त्रिकाली की दृष्टि कराने के लिये कहा कि त्रिकाली में ऐसे भेद नहीं।

संज्ञित्व :- संज्ञीपना और असंज्ञीपना ऐसे भेद पर्याय में होते हैं, शुद्धभाव में ऐसे भेद नहीं, अत: त्रिकाली शुद्धभाव की दृष्टि करनी।

आहार :- आहारकपना तथा अनाहारकपना—ऐसे भेद पर्याय में हैं शुद्धभाव में नहीं।

ऐसे चौदह मार्गणास्थान के भेद पर्याय में ही पड़ते हैं। शुद्धभाव की दृष्टि से देखा जावे तो आत्मा अभेद, एकाकार शुद्ध है—उसमें ऐसे भेद नहीं हैं।

आत्मा एकांत से कूटस्थ नहीं है। व्यवहारनय से पर्याय में भेद पड़ते हैं, परंतु निश्चयनय से आत्मा अभेद एकरूप शुद्ध है। त्रिकाली स्वभाव में ऐसे भेद नहीं हैं।

यह सभी अर्थात् चतुर्गतिभ्रमण, जन्म, मरण, रोग, शोक, कुल, योनि, जीवस्थान, गुणस्थानादि भेद भगवान परमात्मा में अथवा शुद्धस्वभाव-भाव में शुद्ध निश्चयनय के बल से नहीं हैं—ऐसा श्रीमद् भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेव का अभिप्राय है।

यहाँ सिद्धपरमात्मा की बात नहीं है, किंतु शुद्धभावरूपी कारणपरमात्मा प्रत्येकजीव है-उसकी बात है।

ऐसा लेख पढ़कर कोई स्वच्छन्दी जीव ऐसा अर्थ निकाले कि आत्मा एकांत से शुद्ध है और पर्याय में भी अशुद्ध नहीं है तथा भेद भी नहीं है; परंतु मात्र अभेद और कूटस्थ ही है, तो ऐसी मान्यता खोटी है। आत्मा वस्तु ध्रुव होने पर भी पर्याय अपेक्षा से समय-समय पलटती है। सिद्धों में भी परिणमन है। संसारी हो अथवा सिद्ध, सभी में प्रतिसमय अवस्था होती रहती है। परिणामरहित कोई समय नहीं हो सकता। संसार में अशुद्धरूप और सिद्ध में शुद्धरूप से परिणमन है, वे भेद पर्याय में पर्यायदृष्टि से सत् हैं—अवस्तु नहीं।

भगवान ने छह द्रव्य और नव पदार्थ देखे हैं और वैसा ही वस्तु का स्वरूप है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह छह पदार्थ कायम रहकर अवस्था में पलटते हैं और जीव में संसारदशा में पर्यायों में भी अनेक प्रकार के भेद पड़ते हैं—वे सभी यहाँ कहे गये हैं। इसप्रकार वे सभी भेद भेददृष्टि से व्यवहारनय से बराबर हैं। कोई जीव सब मिलकर एक ही वस्तु माने और छह द्रव्य न माने तो झूठ है। और वस्तु को एकांत कूटस्थ माने तथा पर्याय को न माने तो भी खोटा है। पर्याय में अशुद्धता के भेद पड़ते हैं—इस तरह पर्याय का स्वीकार करे और त्रिकाल स्वभाव में ऐसे भेद नहीं हैं—इसप्रकार निश्चय से स्वीकार करे तो व्यवहारप्रमाणज्ञान होता है। किंतु यथार्थ ज्ञान कब कहलाये? त्रिकाल में ऐसे भेद नहीं हैं ऐसा निर्णय करके स्वभाव की निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान करके स्व-परप्रकाशक स्वभाव प्रगट होने पर पर्याय में ऐसे भेद हैं—ऐसा यथार्थ जान ले तब।

(१) अकेले भेदों को माने और अभेद त्रिकालीस्वभाव की तरफ न ढले तो उसका ज्ञान खोटा है।

(२) अभेद स्वभाव को शुद्ध मानकर पर्याय की अशुद्धता अथवा पर्याय को ही न स्वीकारे तो भी खोटा है।

पर्याय का ज्ञान करके त्रिकालस्वभाव में ऐसे भेद नहीं हैं—यह बात यहाँ कहना है। पर्याय में से पर्याय आती नहीं, किंतु त्रिकालशक्ति में से पर्याय प्रगट होती है; इसलिये अंश-बुद्धि, व्यवहारबुद्धि छुड़ाने के लिये और अभेदबुद्धि, स्वभावबुद्धि कराने के लिये जीव में मार्गणास्थानादि के भेद नहीं हैं—ऐसा कहा। ऐसा अभेद शुद्धभाववाला आत्मा सम्यग्दर्शन का कारण है।

शुभाशुभभावों के ऊपर की पर्यायबुद्धि छोड़कर शुद्धस्वभाव की बुद्धि करके शुद्धस्वभाव का स्वयं से अनुभव करो।

इसीप्रकार का भाव श्रीमद् अमृतचंद्रसूरि ने श्री समयसार की आत्मख्याति नाम की टीका में ३५-३६वें श्लोकों में प्रकट किया है, जिनका भाव इसप्रकार है:—

''चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर और चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटपने अवगाहन करके, आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभवो।''

ज्ञानभाव के अतिरिक्त अन्य सभी शुभाशुभ भावों को मूल से छोड़ना; दान-दया-व्रत-भक्ति आदि के शुभभावों पर से दृष्टि—पर्यायदृष्टि छोड़ो और आत्मा अकेला ज्ञायकस्वभाव है—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें अवगाहन करो। जैसे समुद्र में मोती लेने के वास्ते डुबकी मारते हैं वैसे ही निश्चयनय से शुद्धस्वभाव का अवलंबन करके उसमें एकाग्रता करो और समस्त विश्व के ऊपर तैरता केवल अखंड अविनाशी आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभवो। दया-दान-भक्ति एकसमय के परिणाम हैं, उनसे धर्म होनेवाला नहीं—उन सभी भावों से भिन्न आत्मा है। विकार तो कभी शुद्धात्मा में प्रविष्ट हुआ ही नहीं। जल में स्नान करने के समान शुद्धात्मा में डुबकी मारो अर्थात् उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके एकाग्र हो जाओ—यही मोक्ष का कारण और मोक्षमार्ग है। इसप्रकार शुद्धस्वभाव में एकाग्र होने पर अन्य सकल भाव छूट जाते हैं। शुद्ध आत्मा का अनुभव किसी परपदार्थ से तो नहीं, किंतु विकार से भी नहीं होता—शुद्ध अनुभव तो स्वयं से होता है। शुद्ध आत्मा को आत्मा से अनुभवो—ऐसा आचार्य भगवान कहते हैं।

ज्ञानशक्ति से भरपूर आत्मा एक ही सार है, विकारभाव पौद्गलिक हैं, साररूप नहीं।

''चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व सार है, ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है; इस चित्शक्ति से शून्य जो भी भाव हैं, वे सभी पौद्गलिक हैं।''

मैं अखंड ज्ञायकस्वभावी हूँ, चैतन्यशक्ति से प्रसरित हूँ, दया-दानादि के तथा व्रतादि के परिणाम में आत्मा का प्रसार नहीं है, वे भाव अंतर आत्मा में कभी प्रविष्ट ही नहीं हुए। जो

पुण्य-पाप में व्याप्त है वह अनात्मा है—आत्मा है ही नहीं। त्रिकाली कारणपरमात्मा भगवान है, उसमें से भगवान प्रगट होता है—बाहर से नहीं।

जानने-देखनेवाला स्वभाव ही एक साररूप है और यह जीव इतना ही मात्र है तथा जो जानने-देखने के स्वभाव से शून्य विकारी भाव हैं वे साररूप नहीं हैं, वे सभी पौद्गलिक हैं।

पुण्य-पाप के भावों को यहाँ पौद्गलिक कहा अर्थात् वे स्पर्श, रस, गंध, वर्णवाले हैं—ऐसा कहने का भाव नहीं है। वे विकारी पर्यायें जीव में ही होती हैं, कहीं जड़ में नहीं होतीं; तत्त्वार्थसूत्र में पर्याय अपेक्षा से विकार को स्वतत्त्व कहा है। विकार पुद्गल के लक्ष में होता है और शुद्ध स्वभाव में वह नहीं है तथा आत्मा में से निकल जाता है—इसलिये उसे पौद्गलिक कहा है। अतः चैतन्यशक्ति जिसका सार है ऐसे शुद्धात्मा को तू भज—ऐसा कथन का सार है।

अब ४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:—

अनवरतमखंडज्ञानसद्भावनात्मा, व्रजति न च विकल्पं संसृतेर्घोररूपम्।
अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः, परपरिणतिदूरं याति चिन्मात्रमेषः ॥६०॥

सततरूप से अखंडज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा (अर्थात् 'मैं अखंड ज्ञान हूँ' ऐसी सच्ची भावना जिसे निरंतर वर्तती है, वह आत्मा) संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता, किंतु निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता हुआ परपरिणति से दूर, अनुपम, अनघ चिन्मात्र को (चैतन्यमात्र आत्मा को) प्राप्त होता है।

मैं आत्मा ज्ञानस्वभावी हूँ, पुण्य-पाप मेरा स्वरूप नहीं, आत्मा शुद्ध है—ऐसी जो भावना भाता है, वह संसार के घोर विकल्पों को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसको व्यवहार रत्नत्रय के विकल्प की भी रुचि नहीं रहती। आत्मा की भावना तो स्वयं पर्याय है, परंतु उस पर्याय का ध्येय त्रिकाली शुद्धस्वभाव है।

इसप्रकार जो जीव पुण्य-पापादि व्यवहार की रुचि छोड़कर शुद्धस्वभाव की रुचि करता है, वह निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता है। वही जीव पुण्य-पाप की परिणति से दूर, जिसको कोई उपमा न दी जा सके ऐसा, और पुण्य-पाप के दोषरहित शुद्धचैतन्यमात्र को प्राप्त

करता है। इस भाँति जो जीव त्रिकाली अखंड ज्ञायकस्वभाव की भावना भाता है वह जीव शांति को अर्थात् मोक्षदशा को पाता है।

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं।
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चितांघेः॥
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वांतविध्वंसदक्षं।
एते संतो भवाब्धेरपरतटममी यांति सच्छीलपोताः॥६१॥

भक्ति से नमित देवेन्द्र मुकुट की सुंदर रतनमाला द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं—ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक तथा दुष्ट पाप-समूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर ऐसा इसप्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश समझकर संत सत्शीलरूपी नौका द्वारा भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।

देवों द्वारा पूज्य भगवान का उपदेश धारण करके संतगण सत्शीलरूपी नौका से संसार का पार पा जाते हैं।

संत पुरुष भगवानकथित उपदेश समझकर संसार का पार पाते हैं।

अब प्रथम ही उपदेशदाता भगवान कैसे होते हैं, सो कहते हैं। देवों के इंद्र भी भगवान को नमते हैं। वे अपने मुकुटों की सुंदर रत्नमाला से भगवान के चरणों को पूजते हैं। ऐसे तीर्थंकर का उपदेश कैसा है? जन्म-जरा-मृत्यु को नाश करने में और मिथ्यात्वरूपी पाप का क्षय करने में वह उपदेश प्रभावकारक है। उस उपदेश में ऐसा आया कि पर्याय में होनेवाला विकार मात्र एकसमय की स्थितिवाला है, शुद्धस्वभाव में विकार है नहीं। ऐसा भगवान का उपदेश अपने में यथार्थ धारण करके संतजन शुद्धस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करते हैं और उस नौका द्वारा भवरूपी समुद्र को उल्लंघ कर मोक्षदशा को पाते हैं।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

[गतांक से आगे]

पुद्गलद्रव्य की जो वर्तमान पर्याय है, उसमें जीव का अधिकार नहीं है। आत्मा देखने-जाननेवाला है। आत्मा है इसलिये पुद्गल में अवस्था होती है—ऐसा नहीं है। इसप्रकार निर्णय करे तब पर से उपेक्षा होकर अपने में एकाग्र होता है और धर्म होता है।

यहाँ पुद्गलद्रव्य की विभावव्यंजनपर्याय की बात चलती है; शब्द और बंध की बात आ गयी। अब आगे की बात करते हैं।

(३) सूक्ष्मत्व :- सूक्ष्मत्व समझने के लिये उदाहरण देते हैं—बेल फल की अपेक्षा बेर आदि फल में सूक्ष्मत्व है। बेर और बेल फल में जीव ने बेर या बेल के शरीर को किया नहीं है, वह अपनी योग्यता के कारण सूक्ष्म है।

यहाँ बेल की अपेक्षा आँवला, बेर आदि को सूक्ष्म कहा है। अंदर एकेन्द्रिय जीव तो जानने-देखनेवाला है, किंतु उस जीव को अपने ज्ञानस्वभाव की खबर नहीं है, इससे भ्रांति का सेवन करता है। किंतु भ्रांति के कारण सूक्ष्म अथवा बादर (स्थूल) शरीर नहीं हुआ है। श्रीफलरूपी (नारियलरूपी) शरीर उसके अंदर के जीव ने नहीं बनाया है, कारण पुद्गल की अवस्था स्वतंत्र है। जीव अरूपी किंतु स्वतंत्र है, दोनों के बीच अत्यंताभाव है। जीव जड़ का कुछ करता नहीं है।

प्रश्न - नारियल बोनेवाले ने तो श्रीफल (नारियल) बनाया है न?

उत्तर - नहीं! जो पदार्थ स्कंधरूप होने के हों, वे अपने काल में होते हैं। जीव के कारण से नहीं होते हैं।

प्रश्न - कोई पुद्गल जायफलरूप होता है, तब अंदर जीव आया और पहले ऐसा कर्म उपार्जन किया था इसलिये यह अवस्था हुई न?

उत्तर – नहीं; जीव तथा कर्म के कारण यह अवस्था नहीं हुई। अज्ञानी जीव अभिमान करता है कि मैं इसकी अवस्था का कर्त्ता हूँ या मेरे पूर्वोपार्जित कर्म से यह अवस्था हुई है। कर्म भी नोकर्मरूप बेल, आँवला या बेर आदिरूप शरीर की रचना में निमित्तमात्र है। वास्तव में आहारवर्गणा के परमाणु स्कंध अपनी योग्यता से बेल, आँवला या बेर के शरीररूप परिणमे हैं; यह तो उनकी विभावव्यंजनपर्याय ही है जिसके कर्त्ता पुद्गल परमाणु स्वयं है, जीव या कर्म नहीं।

बेर की सूक्ष्मता पुद्गल के कारण है। परमाणु में साक्षात् सूक्ष्मता है। उसमें किसी की अपेक्षा नहीं है, उसको जीव नहीं बनाता है।

(४) स्थूलत्व :- बेर आदि फलों की अपेक्षा से बेल आदि फलों में स्थूलत्व (बड़ापन) है। तीन लोक में व्याप्त अचेतन महास्कंध है, वह सबसे स्थूल है, बड़ा है। यहाँ स्थूल का अर्थ बड़ापन है। स्थूलपना होना वह पुद्गल की विभाव्यंजनपर्याय है। वह जीव के कारण नहीं है। जीव जाननेवाला-देखनेवाला है।

(५) संस्थान :- ये छह प्रकार के होते हैं:-

जिसके उदय से शरीर का आकार ऊपर, नीचे तथा बीच में समान हो अर्थात् जिसके अंगोपांगों की लम्बाई, चौड़ाई सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ठीक-ठीक बनी हो वह समचतुरस्र संस्थान है।

जिसके उदय से शरीर का आकार न्यग्रोध (बड़) के वृक्ष सरीखा-नाभि के ऊपर मोटा और नाभि के नीचे पतला हो वह न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान है।

जिसके उदय से स्वातिनक्षत्र के अथवा सर्प की बाँवी के समान शरीर का आकार हो अर्थात् ऊपर से पतला और नाभि के नीचे मोटा हो उसे स्वाति संस्थान कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से कुबड़ा शरीर हो उसे कुब्जक संस्थान कहते हैं।

जिसके उदय से बौना शरीर हो वह वामन संस्थान है।

जिस कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांग किसी खास शक्ल के न हों और भयानक बुरे आकार के बनें उसे हुंडक संस्थान कहते हैं।

छह प्रकार के संस्थान के भेद व्यवहारनय से जीव के कहे जाते हैं। फिर भी आत्मा तो संस्थान से शून्य है, चैतन्य-चमत्कार परिणामवाला है। उस संस्थान से आत्मा भिन्न है।

इसलिये निश्चयनय से वे सभी आकार पुद्गल की पर्याय के भेद हैं। भिन्न-भिन्न शरीर के आकार ब्रह्मा ने तो बनाये नहीं, किंतु साथ में रहे हुए आत्मा ने भी नहीं बनाये हैं। पुद्गल की सृष्टि पुद्गल से होती है।

प्रश्न - जीव के बिना ऐसे आकार कैसे होंगे?

उत्तर - जीव निमित्तमात्र है, इसलिये व्यवहार से उसे संस्थानवाला बोला जाता है। किंतु जीव है इसलिये पृथक्-पृथक् आकार होते हैं ऐसा नहीं है। कोई मोटा, कोई पतला तथा कोई ठिगना होता है, वह पुद्गल की समय-समय की योग्यतानुसार होता है। अज्ञानी जीव भ्रांति का सेवन करता है कि मुझे ठिगना शरीर मिला, मुझे ऐसा आकार मिला, मेरी आँख फूट गयी, लेकिन यह सब पुद्गल की अवस्था है, जीव की नहीं है। अज्ञानी जीव शरीर के अंगों की प्रशंसा करते हैं और हिरण जैसी आँखें, केला जैसे पैर वगैरह की उपमा देते हैं, लेकिन वे सब माँस की पर्याय हैं। आत्मा तो संस्थानशून्य है, चैतन्य-चमत्कारमात्र है। यहाँ जीव के राग-द्वेष भी नहीं लिये हैं। जीव को संस्थान से भिन्न, राग-द्वेष से भिन्न, मात्र जानने-देखने का परिणामवाला कहा है। इसलिये जड़ का अभिमान छोड़ और चैतन्यचमत्कार की प्रतीति कर—ऐसा इस कथन का सार है।

अब जीव के निमित्तपने रहित आकारों की बात करते हैं। गोल, त्रिकोण, चौकोर, षट्कोण वगैरह प्रगट तथा अप्रगट अनेक प्रकार के आकार हैं। वे पुद्गल के कारण हैं। मानस्तंभ का आकार, अंदर संगमरमर का चौरस आकार, सूर्य की किरणों का छोटे छिद्रों में से निकलना, पूर्णमासी के गोल चंद्रमा का आकार होना उस-उस काल की पुद्गल की योग्यता के कारण हैं, पर के कारण नहीं है। उस आकार का तथा रागादि परिणाम का जीव जाननेवाला मात्र है।

(६) भेद :- गेहूँ का आटा तथा घी-शक्कर आदि अनेकरूप से अनेक प्रकार के भेद (टुकड़े) जानना। उस गेहूँ का आटा होना, आटा मोटा होना, बारीक होना; वह आटाचक्की के करण नहीं, पीसनेवाले के कारण नहीं, वह पुद्गल की विभाव अवस्था है।

प्रश्न – आटाचक्की चलती है, उसका कुछ नहीं है ?

उत्तर – आटाचक्की कौन फिराता है ? फेरनेवाले के कारण आटाचक्की नहीं फिरती और आटाचक्की फिरने से आटा नहीं होता है। जीव अभिमान करता है। गेहूँ में से आटारूप भेद (टुकड़ा) होना, वह पुद्गल की अवस्था है।

जमा हुआ घी अंगुली अथवा चाकू से टुकड़ेरूप में निकलता है, वह जीव के कारण नहीं और चाकू से भी नहीं। शर्करा अथवा रोटी के टुकड़े होना वह दाँत के कारण नहीं, किंतु पुद्गल के कारण है। और फिर आटे में अनेक बार समूचा दाना रह जाता है, छोटे-बड़े टुकड़े होते हैं; यदि पनचक्की के कारण हो तो सब टुकड़े एक सरीखे होना चाहिये, लेकिन ऐसा नहीं होता। शर्करा के टुकड़े होना, लकड़ी के फाड़चा होना, पत्थर के टुकड़े होना, गुड़ के टुकड़े होना—वह भेद का स्वभाव है। उनकी भेदरूप वर्तमान अवस्था तेरे से होवे तो वह पुद्गल को मान्य नहीं है। तेरा प्रयत्न तेरे में है, जड़ की भेदरूप अवस्था जड़ में है; इसप्रकार जड़ की स्वतंत्र पर्याय है, ऐसा स्वीकार करे; वह स्वयं की स्वतंत्रता स्वीकार किये बिना नहीं रहता।

प्रश्न – पुद्गल से चैतन्य विजाति है, इसलिये आत्मा पुद्गल का कुछ कर नहीं सकता; किंतु पुद्गल सजाति पुद्गल का तो कर सकता है न ?

उत्तर – एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता, वह उसके कारण है, तू ज्ञानस्वरूप है। चैतन्यमूर्ति अभेद स्वभाव के आश्रय से जो चैतन्यपरिणामरूप भेद अवस्था होती है, वह तेरे कारण है। वह परिणाम किसी दूसरे के कारण नहीं है। पैसा, लकड़ी, तुअर की दाल आदि में भेदरूप दशा होती है, वह उससे होती है, आत्मा से नहीं होती।

यहाँ पुद्गल के भेद की बात चलती है। घी, लकड़ी, चूना आदि में भेद (खंड) होता है, वह आत्मा के कारण नहीं है; वह पुद्गलद्रव्य की विभावव्यंजनपर्याय है। [क्रमशः]

गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलिये।

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– धर्म का मूल सर्वज्ञ है। उस सर्वज्ञ को माना—ऐसा कब कहा जाये?

उत्तर– जब ऐसा माने कि सर्वज्ञ प्रत्येक द्रव्य की तीन काल की पर्यायों को जानते हैं और वे पर्यायें जिस समय होनेवाली हैं, उसी समय क्रमबद्ध ही होंगी-क्रम तोड़कर होंगी नहीं; तभी सर्वज्ञ को माना है-श्रद्धान किया है, ऐसा माना जा सकता है।

प्रश्न– 'क्रमनियत' शब्द का शब्दार्थ तथा भावार्थ बतलाइए?

उत्तर– 'क्रमनियत' शब्द में क्रम अर्थात् क्रमसर तथा नियत अर्थात् निश्चित। जिस समय जो पर्याय आनेवाली है वह आयेगी, उसमें फेरफार नहीं हो सकता। तीन काल में जिस समय जो पर्याय होनेवाली है वही होगी। जगत का कर्त्ता ईश्वर नहीं, अथवा परद्रव्य का आत्मा कर्त्ता नहीं; परंतु राग का कर्त्ता आत्मा नहीं। अरे! यहाँ तो कहते हैं कि पलटती हुई पर्याय का भी कर्त्ता आत्मा नहीं। षट्कारक से स्वतंत्रपने कर्त्ता होकर पर्याय स्वयं पलटती है, वह सत् है और उसे किसी की भी अपेक्षा नहीं है।

प्रश्न– पर्याय क्रमबद्ध स्वकाल में उत्पन्न होती है, यह बात तो समझ में आई; परन्तु इसीप्रकार की यही पर्याय उत्पन्न होगी—यह इसमें कहाँ आया?

उत्तर– पर्याय क्रमबद्ध स्वकाल में उत्पन्न होती है; इसमें पर्याय जिस समय निश्चित होनेवाली है वही उससमय होगी, ऐसा भी आ ही जाता है। क्योंकि स्वकाल में होनेवाली पर्याय को निमित्तादि किसी की भी अपेक्षा है ही नहीं।

प्रश्न– क्रमबद्धपर्याय का निर्णय कैसे हो? उसके द्वारा सिद्ध क्या करना है? तात्पर्य क्या है?

उत्तर– क्रमबद्धपर्याय का मूल तो सिद्धांत से अकर्त्तापना सिद्ध करना है। जैनदर्शन अकर्त्तावाद है। आत्मा परद्रव्य का तो कर्त्ता है ही नहीं, राग का भी कर्त्ता नहीं और पर्याय का भी

कर्त्ता नहीं। पर्याय अपने ही जन्मक्षण में अपने ही षट्कारक से स्वतंत्ररूपेण जो होनेयोग्य है वही होती है; परंतु इस क्रमबद्ध का निर्णय पर्याय के लक्ष्य से नहीं होता। क्रमबद्ध का निर्णय करने जाये तो शुद्धचैतन्य ज्ञायकधातु के ऊपर दृष्टि जाती है और तभी जाननेवाली जो पर्याय प्रगट होती है वह क्रमबद्धपर्याय को जानती है। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय स्वभाव-सन्मुखवाले अनंत पुरुषार्थपूर्वक होता है। क्रमबद्धपर्याय के निर्णय का तात्पर्य वीतरागता है और यह वीतरागता पर्याय में तभी प्रकट होती है, जब वीतराग-स्वभाव के ऊपर दृष्टि जाती है। समयसार गाथा ३२० में कहा है कि ज्ञान बंध-मोक्ष का कर्त्ता नहीं है, किंतु जानता ही है। आहाहा! मोक्ष को ज्ञान जानता है, मोक्ष को करता है—ऐसा नहीं कहा। अपने में होनेवाली क्रमसर पर्याय को करता है—ऐसा नहीं; किंतु जानता है - ऐसा कहा। गजब बात है भाई!

प्रश्न- क्रमबद्ध में करने के लिये क्या आया?

उत्तर- करना है कहाँ? करने में तो कर्तृत्वबुद्धि आती है। करने की बुद्धि छूट जाये यह क्रमबद्ध है। क्रमबद्ध में कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है। पर में तो कुछ कर सकता ही नहीं और अपने में भी जो होनेवाला है वही होता है अर्थात् अपने में भी राग होना है वह होता है, उसका करना क्या? राग में से भी कर्तृत्वबुद्धि छूट गई, भेद और पर्याय पर से भी दृष्टि हट गई, तब क्रमबद्ध की प्रतीति हुई। क्रमबद्ध की प्रतीति में तो ज्ञातादृष्टा हो गया, निर्मल पर्याय करूँ ऐसी बुद्धि भी छूट गयी, राग को करूँ यह बात तो दूर रह गयी। अरे! ज्ञान करूँ यह बुद्धि भी छूट जाती है, कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है और अकेला ज्ञान रह जाता है। जिसे राग करना है, राग में अटकना है, उसे इस क्रमबद्ध की बात जमी ही नहीं। राग को करना, राग को छोड़ना—यह भी आत्मा में नहीं है। आत्मा तो अकेला ज्ञानस्वरूप है।

पर की पर्याय तो जो होनेवाली है वह तो होती ही है, उसे मैं करूँ ही क्या? और मेरे में जो राग आता है, उसे मैं क्या लाऊँ? और मेरे में जो शुद्धपर्याय आये उसको करूँ-लाऊँ, ऐसे विकल्प से भी क्या? अपनी पर्याय में होनेवाला राग और होनेवाली शुद्धपर्याय उसको करने का विकल्प क्या? राग और शुद्धपर्याय के कर्तृत्व का विकल्प यह शुद्धस्वभाव में है ही नहीं। अकर्त्तापना आ जाना ही मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ है।

प्रश्न– पर्याय तो व्यवस्थित ही होनेवाली है अर्थात् पुरुषार्थ की पर्याय तो जब उसके प्रगट होने का काल आयेगा तभी प्रगट होगी—ऐसी स्थिति में अब करने को रह क्या गया ?

उत्तर– व्यवस्थित पर्याय है ऐसा जाना कहाँ से ? व्यवस्थित पर्याय द्रव्य में है, तब तो द्रव्य के ऊपर ही दृष्टि करनी है। पर्याय के क्रम के ऊपर दृष्टि न करके, क्रमसरपर्याय जिसमें से प्रगट होती है—ऐसे द्रव्यसामान्य के ऊपर ही दृष्टि करनी है, क्योंकि उस पर दृष्टि करने में अनंत पुरुषार्थ आ जाता है। क्रमबद्ध के सिद्धांत से अकर्त्तापना सिद्ध होता है, क्रम के समक्ष देखना नहीं।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ - पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रातः समयसार पर तथा मध्यांतर प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्री के मर्मस्पर्शी प्रवचन चल रहे हैं। प्रतिदिन रात्रि-चर्चा भी चालू है।

शिक्षिण-शिविर

प्रतिवर्ष की भाँति सोनगढ़ में दिनांक २१-७-७९ से ९-८-७९ तक शिक्षण-शिविर होने जा रहा है, जिसमें पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों के अतिरिक्त माननीय विद्वद्वर्य श्री रामजीभाई, श्री खीमचंदभाई आदि विद्वान कक्षाऐं लेंगे। क्लास में निम्न पुस्तकें चलेंगी:—

(१) उत्तम वर्ग :- मोक्षमार्गप्रकाशक और जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला।
(२) मध्यम वर्ग :- छहढाला, द्रव्यसंग्रह और जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला।
(३) जघन्य वर्ग :- छहढाला और लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका।

शिविर में आनेवाले आत्मार्थी बंधु पुस्तकें अवश्य साथ में लावें। **—व्यवस्थापक**

प्रवचनकार प्रशिक्षण-शिविर भी

पर्यूषण पर्व या अन्य अवसरों पर प्रवचनार्थ जानेवाले तथा मुमुक्षु मंडलों की दैनिक

तत्त्वगोष्ठियों में प्रवचन करनेवाले प्रवचनकार बंधुओं के लिये गतवर्ष की भाँति इस वर्ष भी प्रवचनकार प्रशिक्षण-शिविर पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की छत्रछाया में शिक्षण-शिविर के साथ ही डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के निर्देशन में दिनांक २१-७-७९ से ९-८-७९ तक सोनगढ़ में आयोजित किया जा रहा है। जिसमें डॉ० भारिल्लजी के अतिरिक्त विद्वद्वर्य श्री लालचंदभाई, श्री बाबूभाई एवं श्री नेमीचंदजी पाटनी आदि अध्यापन कार्य करेंगे। इसमें नयचक्र, आलापपद्धति एवं मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार पर नयों एवं क्रमबद्धपर्याय का ज्ञान तथा सामान्य रीति-नीति संबंधी ज्ञान कराया जायेगा। पुस्तकें जिनके पास हों लेते आवें, अन्यथा यहीं व्यवस्था की जायेगी। — **व्यवस्थापक**

भावनगर (गुज०) - दिनांक ३०-४-७९ से ६-५-९ तक पूज्य गुरुदेवश्री यहाँ विराजे। प्रातः समयसार पर तथा दोपहर में 'बेनश्री के वचनामृत' पर आपके अत्यंत मार्मिक प्रवचन हुए। रात्रि को तत्त्वचर्चा भी चलती थी। इस अवसर पर श्री हीरालालजी जैन भावनगरवालों ने श्री वीतराग-विज्ञान सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट को २५ हजार रुपये की धनराशि प्रदान की। — **शशिभाई**

पूज्य कानजीस्वामी की जन्म-जयंती सानंद संपन्न

जवेरा (म०प्र०) - अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में स्थानीय जैन समाज द्वारा पूज्य कानजीस्वामी की ९० वीं जन्म-जयंती उल्लासपूर्वक मनायी गयी। अनेक वक्ताओं ने पूज्य स्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके दीर्घजीवी होने की कामना की। — **जयकुमार जैन**

फुटेरा (म०प्र०) - पूज्य कानजीस्वामी की ९० वीं जन्म-जयंती श्री दिगंबर जैन मुमुक्षुमंडल, फुटेरा के तत्त्वावधान में हर्षोल्लास के साथ मनायी गयी।

— **पंडित ऋषभकुमार जैन**

सहारनपुर (उ०प्र०) - स्थानीय मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में श्री देवचंदजी साहित्याचार्य के सभापतित्व में सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के ९०वें जन्म-दिवस पर सभा आयोजित की गई। इस अवसर पर साहित्य प्रकाशन के लिये दानराशि भी घोषित की गई।

— **जिनेश्वरदास बजाज**

छिंदवाडा (म०प्र०) - अ० भा० जैन युवा फैडरेशन एवं स्थानीय मुमुक्षुमंडल के तत्त्वावधान में पूज्य कानजीस्वामी की ९०वीं जन्म-जयंती अपूर्व उत्साह के साथ मनायी गयी। श्री विद्यासागरजी पांडे, व्याख्याता की अध्यक्षता में सभा का आयोजन किया गया। पंडित उत्तमचंदजी आदि वक्ताओं ने स्वामीजी के प्रति उद्‌गार व्यक्त किये। सभा का संचालन श्री जयचंदजी जैन ने किया।

— अशोककुमार जैन

प्रवचनों एवं कक्षाओं से अपूर्व लाभ

जयपुर - श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के वार्षिक कार्यक्रम के अंतर्गत दिनांक २५-५-७९ से ५-६-७९ तक पंडित शशिभाई भावनगर एवं पंडित रतनचंदजी भारिल्ल विदिशा के प्रवचनों तथा कक्षाओं का आयोजन किया गया। प्रतिदिन तीनों समय पंडित रतनचंदजी भारिल्ल गोम्मटसार कर्मकांड, तत्त्वार्थसूत्र तथा वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग ३ की कक्षाऐं लेते थे। दिनांक ३१-५-७९ से पंडित शशिभई के प्रतिदिन प्रातः दिगंबर तेरापंथी बड़े मंदिर में तथा रात्रि को पंडित टोडरमल स्मारक भवन में समयसार ग्रंथ पर मार्मिक प्रवचन तथा दोपहर को तत्त्वचर्चा चलती थी। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने भी मोक्षमार्गप्रकाशक एवं न्यायदीपिका की कक्षाऐं लीं। अन्त में आगन्तुक विद्वानों को भावभीनी विदाई दी गयी।

— अभयकुमार जैन

पंच कल्याणक महोत्सव संपन्न

वली (राजस्थान) - दिनांक ३-५-७९ से ९-५-७९ तक विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद संपन्न हुआ। अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर तथा पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा के प्रतिदिन तीनों समय समयसार तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर सारगर्भित प्रवचन होते थे। आपके प्रवचनों को हजारों व्यक्तियों ने बड़ी ही रुचिपूर्वक सुना। इस अवसर पर आत्मधर्म के २०० से भी अधिक ग्राहक बने तथा जैनपथ प्रदर्शक के भी अनेक ग्राहक बने। अंतिम दिन विशाल रथयात्रा का भी आयोजन किया गया। पंच कल्याणक प्रतिष्ठाविधि पंडित गुलाबचंदजी 'पुष्प' टीकमगढ़ तथा पंडित मनोरंजनजी शास्त्री उदयपुर द्वारा संपन्न की गयी। प्रतिष्ठा महोत्सव को सफल बनाने में मुमुक्षु मंडल उदयपुर तथा जैन समाज कुराबड़ का विशेष योगदान रहा।

वली से लौटते हुए ग्राम जगत तथा सलूम्बर में पंडित बाबूभाई मेहता के एक-एक समय तात्त्विक प्रवचन हुए। — ब्रजलाल नागदा

वेदी-प्रतिष्ठा सानंद संपन्न

मंदसौर (म०प्र०) - दिनांक ११-५-७९ से १३-५-७९ तक श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल मंदसौर के तत्त्वावधान में वेदी-प्रतिष्ठा का कार्य सानंद संपन्न हुआ। प्रतिदिन तीनों समय पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर तथा पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा के मार्मिक प्रवचनों से अनेक साधर्मी बंधुओं ने लाभ लिया। रथयात्रा का आयोजन भी किया गया। इस अवसर पर आत्मधर्म के लगभग १०० ग्राहक बनाये गये तथा जैनपथ प्रदर्शक के भी अनेक ग्राहक बने। कुचरोद निवासी स्व० सेठ चुन्नीलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती केशरबाई की ओर से ५००१) रुपये श्री कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट को देने की घोषणा की गयी। प्रतिष्ठाविधि ब्रह्मचारी हेमराजजी तथा पंडित बाबूलालजी अशोकनगर वालों द्वारा संपन्न की गयी। — प्रहलाददास जैन

अहमदाबाद (गुज०) - दिनांक ४-५-७९ से ७-५-७९ तक स्थानीय आशीषनगर के श्री चंद्रप्रभ चैत्यालय में वेदी-प्रतिष्ठा का कार्य सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर दोनों समय अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता के सारगर्भित तात्त्विक प्रवचन चलते थे। अंतिम दिन विशाल रथयात्रा निकाली गयी। प्रतिष्ठा-विधि पंडित बाबूलालजी अशोकनगर वालों द्वारा संपन्न की गयी। — चंपालाल जैन

प्रतापगढ़ (राज०) - दिनांक १३-५-७९ को मंदसौर से लौटते हुए पंडित बाबूभाई मेहता एक समय को यहाँ रुके। स्थानीय तेरापंथी दिगंबर जैन मंदिर में आपका तात्त्विक प्रवचन हुआ।

जावरा (म०प्र०) -मंदसौर से लौटते हुए पंडित बाबूभाई मेहता एवं पंडित ज्ञानचंदजी यहाँ पधारे। स्थानीय जिनमंदिर के प्रांगण में दोनों विद्वानों के प्रवचन हुए जिससे समाज लाभांवित हुआ।

शिक्षण-शिविर का आयोजन

जयपुर (राज०) - दिनांक १५-५-७९ से ३०-६-७९ तक श्री नवरंग बाल विद्यालय की ओर से माडर्न स्कूल में चलनेवाले धार्मिक शिक्षण-शिविर का उद्घाटन श्री

बंशीलालजी लुहाड़िया एडवोकेट, अध्यक्ष, अशोकनगर जैन समाज ने किया। इस अवसर पर डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। आपने धार्मिक शिक्षण-शिविरों की आवश्यकता एवं महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए अपना पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया। डॉ० ताराचंदजी बख्शी एवं श्री प्रेमचंदजी छाबड़ा ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

— नवरतनमल जैन

कोटा (राज०) - अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा द्वारा दिनांक २८-४-७९ से ११-५-७९ तक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। तीनों समय की कक्षाऐं पंडित कैलाशचंदजी बुलन्दशहरवाले लेते थे। शिविर में पुरुष, महिलाओं तथा बच्चों के अतिरिक्त युवा वर्ग ने भी विशेष रुचिपूर्वक लाभ लिया। समाज में अच्छी धर्मप्रभावना हुई।

— राजेश सोगानी

आगरा (उ०प्र०) - दिनांक २४-५-७९ को स्थानीय नमकमंडी के जिनालय में भगवान शांतिनाथ का जन्म, तप तथा निर्वाण कल्याणक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर पंडित ज्ञानचंदजी के आध्यात्मिक प्रवचन आयोजित किये गये। **— पदमचंद सर्राफ**

ऐत्मादपुर (उ०प्र०) - स्थानीय जैन समाज के निमंत्रण पर पंडित शांतिकुमारजी जैन मौ से पधारे। १३-५-७९ तक चारों समय आपके तात्त्विक प्रवचन तथा कक्षाओं का आयोजन किया गया। आपके प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुआ। **— अभयकुमार जैन**

आवश्यकता है - एक ऐसे विद्वान की जो स्थानीय पाठशाला में धर्म पढ़ा सके। श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जावेगी। **— विनोदचंद सर्राफ, सदर बाजार, मुरार (ग्वालियर-म०प्र०)**

आवश्यकता है - एक ऐसे विद्वान की जो भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति, जयपुर द्वारा संचालित पाठशालाओं तथा श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड से संबंधित पाठशालाओं का निरीक्षण कर सके एवं प्रवचनों द्वारा समाज में जागृति ला सके तथा प्रेरणा देकर नवीन पाठशालाऐं खुला सके। आध्यात्मिक प्रवक्ता विद्वान को प्राथमिकता दी जावेगी। **— मंत्री, भा० वी० वि०पाठशाला समिति, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४**

शायद भविष्य में कोई मूल्यांकन करे.... ?

यह वाक्य दिगंबर जैन समाज के मूर्धन्य विद्वान पंडित कैलाशचंदजी सिद्धांताचार्य, वाराणसी, संपादक जैन संदेश ने तब कहा जब उनके सम्मान में पंडित टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर द्वारा आयोजित सभा में वे बोल रहे थे। आपके साथ पंडित खुशालचंदजी गोरावाला, डॉ० नरेन्द्रजी विद्यार्थी एवं डॉ० कन्छेदीलालजी जैन भी थे। आपने कहा—डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने लेखन तथा शिविरों के माध्यम से तत्त्वप्रचार के कार्य में बहुत अधिक सहायता पहुँचाई है। अब आपने अपने माथे पर आत्मधर्म एवं महाविद्यालय का कार्य भी ले लिया है। इन सब कार्यों का शायद भविष्य में कोई मूल्यांकन करे ?'' उन्होंने यह भी कहा कि ''मैं तो हर जगह कहता रहता हूँ कि श्री बाबूभाई एवं डॉ० भारिल्लजी तो सोनगढ़रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं।''

विद्यार्थियों के कार्य, रहन-सहन, क्वालिटी एवं प्रतिभा को देखकर आपने कहा—''हम तो पहले सुनते थे कि टोडरमल महाविद्यालय में विद्यार्थी पैसों के लोभ से आ रहे हैं, परंतु विद्यार्थियों को देखकर ऐसा लगा कि ये सचमुच हृदय से जैन शास्त्रों को पढ़ने के इच्छुक हैं तथा गंभीर अध्ययन करना चाहते हैं।'' उन्होंने मार्गदर्शन करते हुए यह भी कहा कि—''आप लोगों को इसप्रकार का काम करना है जिससे समाज में विसंवाद न बढ़े।''

दिगंबर जैन संघ, मथुरा के प्रधानमंत्री श्री खुशालचंदजी गोरावाला ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा—''यहाँ के विद्यार्थियों को अपनी पूँजी बतौर विषय का गहन अध्ययन आवश्यक है।''

डॉ० नरेन्द्रजी विद्यार्थी, भू० पू० विधायक छतरपुर ने अपने विचार रखते हुए यहाँ के विद्यार्थियों की तुलना धरसेनाचार्य के शिष्यों से की। आपने कहा—''जिसप्रकार धरसेनाचार्यजी ने अपने शिष्यों को षट्‌खंडागम का ज्ञान दिया था; उसीप्रकार यहाँ भी विद्यार्थियों को आगम का ज्ञान दिया जाता है। वहाँ उत्तर के आचार्य के पास दक्षिण के युवा मुनि आये थे और यहाँ युवा विद्वान के पास युवा छात्र आये हैं।'' आगे आपने अपने वक्तव्य में कहा—''यहाँ के विद्यार्थी चैतन्य हीरे हैं तथा जौहरियों के नगर इस जयपुर में उन चैतन्य-हीरों को शिक्षा, स्वाध्याय तथा आचरण के द्वारा तरासा जा रहा है एवं पानी चढ़ाया जा रहा है।''

आपने कहा—''इसी ज्ञान के माध्यम से हमारे श्रुत की परंपरा का विकास होगा तथा श्रुत की रक्षा होगी।'' यहाँ के वातावरण से आप अत्यंत प्रभावित हुए और कहने लगे—''यदि मैं इस योग्य होता तो यहाँ पर अध्ययन करके अपने 'विद्यार्थी' नाम को जरूर सार्थक करता।''

जैन समाज के प्रमुख साप्ताहिक जैन संदेश के सह-संपादक डॉ० कन्छेदीलालजी शहडोल ने अपने उद्‌गार निम्नप्रकार प्रगट किये—''इस महाविद्यालय के माध्यम से जो तत्त्वप्रचार तथा स्वाध्याय की परंपरा का विकास हुआ है, वह सराहनीय है।'' आपने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—''दैनिक स्वाध्याय के पुनर्स्थापन का मुख्य श्रेय सोनगढ़ तथा इस स्मारक ट्रस्ट को है।''

अंत में डॉ० गोपीचंदजी पाटनी, प्राध्यापक राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर ने, जो कि इस सभा की अध्यक्षता कर रहे थे, स्मरण कराते हुए कहा—''विगत दिनों जब एलाचार्य मुनिश्री विद्यानंदजी इस स्मारक में पधारे थे तो उन्होंने भी इस महाविद्यालय की गतिविधियों पर खुशी जाहिर करते हुए कहा था कि यहाँ के विद्यार्थी निश्चय ही विद्वान बनेंगे और भारत के कौने-कौने में तत्त्व का प्रचार-प्रसार करेंगे।'' उक्त सभी विद्वान दिनांक ३१-५-७९ को मदनगंज-किशनगढ़ के पंच कल्याणक से लौटते हुए पंडित टोडरमल स्मारक भवन में पधारे थे।

— अखिल बंसल

उज्जैन (म०प्र०) :- यहाँ १ मई, ७९ को श्री वीतराग-विज्ञान पाठशाला का चतुर्थ वार्षिकोत्सव श्रीमती तेजकुमारीबाई सेठी (विनोद मिल्स) की अध्यक्षता में मनाया गया। आपने अपने अध्यक्षीय भाषण में गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालायें खोलने की आवश्यकता पर जोर दिया। अंत में पुरस्कार वितरण किये गये।

— प्रदीप झांझरी

लकड़वास (राज०) :- दिनांक २७-५-७९ से ३०-५-७९ तक पंडित देवीलालजी मेहता उदयपुर, पंडित रंगलालजी भुगनोत कुराबड़ तथा पंडित मांगीलालजी अग्रवाल उदयपुर वाले पधारे। आप सभी विद्वानों के तीनों समय के प्रवचनों से विशेष धर्मप्रभावना हुई। दिनांक ३०-५-७९ को श्रुतपंचमी समारोह धूमधाम से मनाया गया।

— भूरालाल जैन

पाठकों के पत्र

जसवंतनगर (उ०प्र०) से श्री सुदर्शनलालजी जैन लिखते हैं: —

पूज्य स्वामीजी के तो हम लोगों के लिये महान-महान उपकार हैं। वर्तमान युग में अध्यात्म की उच्चकोटि का दिग्दर्शन करानेवाला स्वामीजी के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति नहीं। आपके संपादकीय द्वारा अध्यात्म का जो रहस्य प्रगट होता है, वह अकथनीय है।

भीलवाड़ा (राज०) से डॉ० पारसमलजी अग्रवाल लिखते हैं: —

आपने आत्मधर्म के संपादकीय में क्रमबद्धपर्याय की विवेचना जिस सुंदर ढंग से चला रखी है, वह अभूतपूर्व है। पुरुषार्थ एवं क्रमबद्धपर्याय का सुंदर समन्वयन दर्शनशास्त्र की एक मौलिक समस्या को हल करता है कि भाग्य एवं पुरुषार्थ में अनबन नहीं है।

महीदपुर (म०प्र०) से श्री शांतिलालजी सोगानी लिखते हैं: —

डॉ० भारिल्लजी का संपादकीय—क्रमबद्धपर्याय का लेख बहुत ही स्पष्ट एवं रहस्योद्घाटक चल रहा है।

उज्जैन (म०प्र०) से श्री कन्हैयालालजी कासलीवाल लिखते हैं: —

आत्मधर्म पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता होती है। डॉ० भारिल्लजी का दशधर्म एवं क्रमबद्धपर्याय का विवेचन पढ़कर बहुत सी भ्रांतियों का निराकरण हुआ है। आगामी अंक की प्रतीक्षा बनी रहती है।

रतलाम (म०प्र०) से श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी लिखते हैं: —

जीवन की भूल-भुलैया में आत्मधर्म एक सच्चा पथ-प्रदर्शक है।

सिकंदराबाद (आंध्र) से श्री एस० हस्तीमलजी मुणोत लिखते हैं: —

आत्मधर्म जब से आपके संपादन में आया है, उसमें बहुत निखार आ गया है।

सागर (म०प्र०) से श्री मन्नूलालजी जैन एडवोकेट लिखते हैं: —

आत्मधर्म बहुत ही उत्तम निकल रहा है। पूज्य गुरुदेव की वाणी के प्रसार में भारिल्लजी का सहयोग सराहनीय है।

ग्वालियर (म०प्र०) से श्री धनपतलालजी जैन एडवोकेट लिखते हैं: —

आत्मधर्म पत्रिका पढ़ी। बड़ी अच्छी एवं ज्ञानवर्धक लगी।

भोपाल (म०प्र०) से श्री फूलचंदजी गोयल लिखते हैं: —

श्री भारिल्लजी के संपादकत्व में निश्चय ही पत्रिका का स्वरूप सरल, हृदयग्राही एवं प्रभावोत्पादक हुआ है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें: —

(१) आत्मधर्म के जिन ग्राहकों का शुल्क जून माह में समाप्त हो रहा है, उन सभी बंधुओं को विगत अंकों में मनिआर्डर फार्म भेजे गये थे। जुलाई का आत्मधर्म केवल उन्हीं बंधुओं को भेजा जा सकेगा जिनका शुल्क इस कार्यालय में उस समय तक प्राप्त हो गया होगा। भेंट में दी जानेवाली पुस्तक का भेंट-कूपन जुलाई के अंक में प्रकाशित किया जावेगा। उक्त कूपन के आधार पर ही भेंट की पुस्तक प्राप्त होगी।

(२) इस कार्यालय से प्रतिमाह सभी ग्राहकों को नियमितरूप से आत्मधर्म भेजा जाता है। डिस्पैचिंग के समय विशेष रूप से सावधानी भी बरती जाती है। फिर भी डाक आदि की गड़बड़ी से अथवा अन्य किसी कारण से जिन बंधुओं को अंक प्राप्त नहीं होता है उनके पत्र आने पर जब तक उक्त अंक की प्रति हमारे स्टॉक में होती है, हम दुबारा भेज देते हैं परंतु स्टॉक में समाप्त होने पर हम भेजने में असमर्थ रहते हैं।

(३) किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें।

प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री लालचंदभाई का अभिनंदन

बम्बई :- स्थानीय मुम्बादेवी, घाटकोपर, मलाड़ तथा दादर इन चारों मुमुक्षु मंडलों द्वारा दिनांक २७-५-७९ को श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता की अध्यक्षता में प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री लालचंदभाई अमरचंद मोदी का हार्दिक अभिनंदन किया गया। इस अवसर पर आपको अभिनंदन-पत्र भी भेंट किया गया। अब श्री लालचंदभाई अपना सारा समय अध्यात्म चिंतन-मनन व तत्त्व के प्रचार-प्रसार में लगाऐंगे तथा अधिकांश समय सोनगढ़ व राजकोट रहेंगे।

प्राइमरी पास छात्रों को हस्तिनापुर गुरुकुल भेजें

हस्तिनापुर गुरुकुल में ७ जुलाई से १५ अगस्त तक प्रवेश प्रारंभ हैं। ५वीं कक्षा पास छात्रों को प्रवेश दिलायें। प्राइमरी उत्तीर्ण प्रतिभासंपन्न १० छात्रों को नि:शुल्क प्रवेश दिया जावेगा। छात्रावास एवं शिक्षा की उत्तम व्यवस्था है। **—मंत्री**

शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन

अजमेर :- दिनांक ७-६-७९ को यहाँ श्री वीतराग-विज्ञान तेरहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का शुभारंभ हुआ। प्रात: ८.३० पर प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता श्री विमलचंदजी बज ने झंडारोहण किया। श्री बाबूभाई के प्रवचन के उपरांत ९.०० बजे सेठ श्री पन्नालालजी गंगवाल की अध्यक्षता एवं राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन के मुख्य आतिथ्य में सेठ श्री रतनलालजी गंगवाल द्वारा इस शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का विधिवत् उद्घाटन हुआ। श्री रमेशचंदजी सोगानी ने मुख्य अतिथि का एवं अन्य कार्यकर्ताओं ने समागत विद्वानों का स्वागत किया।

श्री रमेशचंदजी सोगानी ने अपने स्वागत भाषण में कहा—''अजमेर नगर का यह परम सौभाग्य है कि यहाँ पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर के अंतर्गत चलनेवाला १३वाँ वीतराग-विज्ञान शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर हो रहा है। इस शिविर के माध्यम से हमें जैन तत्त्वज्ञान का लाभ प्राप्त होगा आदि....।'' इसके पश्चात् श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर के रजिस्ट्रार एवं टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के आचार्य दार्शनिक विद्वान डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने इस परीक्षाबोर्ड की गतिविधियों का परिचय देते हुए कहा—''जैनधर्म में विज्ञान शब्द कोई नया नहीं है। एक हजार वर्ष पूर्व रचित जैनशास्त्रों तक में विज्ञान शब्द का उल्लेख पाया जाता है जबकि तब तो आज के विज्ञान का नामोनिशान भी नहीं था।'' आपने आगे कहा—''कुछ लोग पूछते हैं जैनधर्म विज्ञान है अथवा कला? उनसे मेरा कहना है कि जैनधर्म कलात्मक विज्ञान है और वैज्ञानिक कला.....।'' इस बात को उन्होंने सतर्क सिद्ध भी किया।

अंत में हमारे सम्माननीय मुख्य अतिथि राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा:—

''दर्शन के क्षेत्र में सत्य की अनुभूति होती है तो ऐसा लगता है कि जैसे बिजली का बटन दबा दिया हो। हम गृहस्थ लोगों को आदरणीय बाबूभाई एवं डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल आदि लोग तत्त्वज्ञान की मीठी-मीठी गोलियाँ खिलाते हैं।'' आपने आगे कहा—''ये शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर हमें सोचने को तथा कुछ समझने को बाध्य करते हैं, प्रेरणा देते हैं। ये कहते हैं कि चेतन को परख लो, अंतर में जाकर आत्मा को जान लो, इनमें कुछ विशेष अनुभूति है।''

आपने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा:—

''सत्य लोगों को कड़वा लगता है। सोनगढ़वाले सत्य का दर्शन कराते हैं, शुद्धात्मतत्त्व क्या है? यही तो बताते हैं। किंतु कुछ लोगों को अखरता है। एक-दूसरों के प्रति आदर होना चाहिये, स्नेह होना चाहिये, उदार होना चाहिये। तत्त्व के प्रचार को कोई रोक नहीं सकता, यह सनातन सत्य है। यदि कोई अनुदारता बरतता है, बाधा उत्पन्न करता है, असहयोग करता है तो उससे यह प्रवाह रुकनेवाला नहीं है।''

स्मरण रहे कि यह शिविर ७ जून से २६ जून तक चलेगा। इसमें सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता, दार्शनिक विद्वान डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, वाणीभूषण पंडित ज्ञानचंदजी, पंडित शशिभाई सेठ, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, पंडित उत्तमचंदजी तथा पंडित नेमीचंदजी पाटनी आदि अनेक विद्वानों का सक्रिय सहयोग प्राप्त हो रहा है। प्रात: ५ बजे से रात्रि १० बजे तक लगभग १० घंटे का व्यस्त कार्यक्रम २० दिन तक नियमित चलेगा। इसमें तत्त्वचर्चा, बाल-शिक्षण, प्रौढ़-शिक्षण, प्रशिक्षण तथा प्रवचन के अतिरिक्त पूजन एवं भक्ति के कार्यक्रम भी नियमित चलेंगे।

— मनोहरलाल जैन

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४